बिन बुलाया मेहमान

एवं अन्य कहानियां

मूल लेखक

कृष्ण खटवाणी

अनुवादक एवं सम्पादक

राधाकृष्ण चाँदवाणी

मेरी दृष्टि में

कृष्ण खटवाणी सिंधी के प्रसिद्ध लेखक हैं और साहित्य अकादमी से पुरस्कृत भी ! उनका यह पहला कहानी संग्रह हिन्दी में अनुवादित होकर आया है जिसके अनुवादक हैं, राजस्थानी और सिंधी के जाने माने लेखक और अनुवादक राधाकृष्ण चादवानी।

कृष्ण खटवानी के इस संग्रह मे संग्रहीत कहानियां पढ़ने के बाद मुझे लगा कि ये कहानियां अन्तर्मन और जीवन के अधूरेपन से उत्पन्न पीडा की कहानियां हैं। वह पीडा जिसके मूल मे करुणा अंकित मानवीय संवेदनाओं का सिलसिला है। ये कहानियां चाहे स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की हो चाहे पारिवारिक। उनमे सामाजिक सरोकारो के गतिमान क्षणों के मध्य एक टूटन, भय और खालीपन की धारा है जो पाठको को बांधे रखती है! लेखक ने जीवन की विभिन्न समस्याओं को अपनी कहानियो के माध्यम से विश्लेषित करने की चेष्टा की है पर वे किसी उद्देश्यात्मक समाधान की ओर संकेत नहीं करती जो लेखक को यथार्थवादी और तटस्थ तो बनाती है पर पाठको के आगे एक गहरा धुंधलका छोड़ जाती है। कदाचित लेखक अपने भीतरी संस्कारों से मुक्त नहीं है। "बिन बुलाया मेहमान", "नदी का किनारा" और "जीने का साधन" विषय वस्तु की दृष्टि से ये कहानियां अच्छी है पर उनमे कहीं भी स्वस्थ विद्रोहात्मक बिंदु नहीं है जो पाठकों को नयी दृष्टि प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त "हाथ की रेखाएं" और "अकेली" कहानियां इस संग्रह की बहुत अच्छी कहानियां हैं। ममर और नीलिमा के चरित्र आज की पूंजीवादी अपूर्णता को जीते हैं जो मोड़ मे अकेलेपन का अहसास कराती है—अर्चना तो इस युग की एक विडम्बना सी लगती है। दोनों कहानियां वेदना और करुणा की काव्यात्मक रचनाएं

प्रबुद्ध पाठकों से........ ....

मेरे मौलिक लेखन सिन्धी, हिन्दी एवं राजस्थानी के साथ-साथ मेरा सदा यह प्रयास रहा है कि सिन्धी साहित्य जगत के प्रख्यात रचनाकारों की चर्चित रचनाओं का हिन्दी व राजस्थानी भाषा में अनुवाद कर आपके सम्मुख रखता रहूं, जो मैं हिन्दी व राजस्थानी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समय-समय पर करता रहा हूं।

अनूदित इसी प्रकार सिन्धी कहानियों के कुछ हिन्दी भाषा में तीन संग्रह इससे पूर्व आपकी सेवा में प्रस्तुत किए है। उसी की यह चौथी कड़ी है, प्रसिद्ध सिन्धी साहित्यकार कृष्ण खटवाणी की चयनित व चर्चित कुछ श्रेष्ठ सिन्धी कहानियों का संग्रह "बिन बुलाया मेहमान"।

पूर्ण विश्वास है कि पूर्व की भांति यह कहानी संग्रह भी आपको रुचिकर लगेगा तथा सिन्धी कथा साहित्य से निकट पहचान कराएगा।

बाम्बे मेडीकल स्टोर के पीछे
कोट गेट के अन्दर
बीकानेर - 334001

विनीत
राधाकृष्ण चाँदवाणी

बिन बुलाया मेहमान

मैं जानता हूं कि आप लोग मुझे धिक्कारते हैं मुझे विचित्र (Abnormal) समझते है। शायद सोचते हो कि मुझे किसी डाक्टर की निगरानी मे किसी अस्पताल मे रहना चाहिए। लेकिन आप लोग भी संसार के उन इन्सानो मे से है जो अल्पज्ञान को विद्वता समझते है। नही, आप ससार को नही जानते। आप इन्सान को नही जानते। बस, आपने इतना ही ज्ञान पाया है कि अपना पेट पाल सकें। इससे अधिक आप कुछ नही जानते।

आप मे से कुछ कहते हैं कि मैं सभ्य नही हूं और शिष्टता नही जानता। आप मे से कुछ अपनी सम्मति व्यक्त करते है कि शायद बचपन मे मुझे गलत मित्रता मिली होगी, कुछ कहते है कि मैने ऐसी कोई पुस्तकें पढ़ी होगी जो किसी सामाजिक प्राणी को नही पढ़नी चाहिए, और कुछ तो यह भी कह देते है कि कभी-कभी मेरे दिमाग के स्क्रू ढीले हो जाते है।

सच तो यह है कि मैं स्वयं एक सभ्य इन्सान बनने का प्रयास करता हूं। प्रयास करता हूं कि मैं भी सामान्य इन्सान सा चलूं। सदा मित्रो, रिश्तेदारो के बीच मे रहकर हसूं, ठहाके लगाऊं, इधर-उधर की बातें करके दूसरो का मन बहलाऊं और अपने जीवन का बोझ हल्का करूं। पर न जाने क्यो, किसी समारोह मे भाग लेते हुए एकस्मात ही उदास हो जाता हूं। चारो तरफ दृष्टि घुमाता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि वे लोग कोई और है, तथा मैं कोई और हूं। वे इस समारोह के आदरणीय अतिथि हैं, निमन्त्रण देकर बुलाए गए है। पर मैं कोई पराया हूं, बिना निमन्त्रण ही यहां पहुंच गया हूं और अचानक ही कोई मुझे पहचान लेगा तथा मेरे सम्मुख

मेरे साथ बचपन में ऐसी कई घटनाएं घटित हुईं। वह माँ इस [illegible] उसे लिए व्यवहार से कभी कभी इतना दुःखी होती थी कि [illegible] रोना आ जाता था। बाहर से तो मैं निश्चिन्त बना रहता था, परन्तु उसकी पीड़ा देखकर मन ही मन प्रसन्न होता था। किन्तु मां की अनुपस्थिति में मेरी मां का वह चेहरा दुबारा ही रूप धारण कर मेरे सामने आता था और मैं उसे दुःखी देखकर स्वयं को धिक्कारने लगता था, अपने आप को बुरा-भला कहने लगता था।

मेरे जीवन में सदा ऐसा ही हुआ है। लगता है जैसे मिठाई खाते-खाते मिठाई में से कोई कुल्प कीड़ा निकल आता है। न केवल मुंह का स्वाद अपितु मूड भी खराब हो जाता है। उदाहरणार्थ मैं आपको अपनी मैट्रिक की परीक्षा की बात बताता हूं। मैंने परीक्षा में बहुत अच्छे पेपर किये थे और विश्वास था कि मैं प्रथम श्रेणी में पास हो जाऊंगा। अन्तिम प्रश्न-पत्र की पूर्व रात्रि को मैं पढ़ रहा था। मां प्रसन्न होकर पड़ोसियों को बता रही थीं कि मैंने पेपर बहुत अच्छे किए हैं और बहुत अच्छे अंकों से सफल हो जाऊंगा। उनके मुंह पर और आंखों में प्रसन्नता देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया। मानो कोई तरल पदार्थ पत्थर सा कठोर हो गया। दूसरे दिन जान बूझकर मैं प्रश्न पत्र बिगाड़ आया और प्रथम श्रेणी के स्थान पर तृतीय श्रेणी मिली। मुझे श्रेणी गवाने का इतना दुख नहीं था जितना मां को दुखी देखकर प्रसन्नता हुई।

मिलकर मिलती थी। परमेश्वरी हमारे घर आती थी तो ममी को रसोईघर से निकालकर सब काम स्वयं करने लगती थी। वे दोनो खाट पर बैठ कर बतियाती रहती थी, ठहाके लगाती थी और मैं बालकनी में खड़ा होता था। मुझे उनके ठहाके अच्छे नहीं लगते थे।

परमेश्वरी मेरी बहुत दूर की रिश्तेदार लगती थी। सब रिश्तेदार यही समझते थे कि देर-सवेर एक दिन अवश्य वह मेरा घर बसायेगी। वह भी मेरे घर को अपना घर समझने लगी थी। मेरे कमरे मे आकर वस्तुओं को ठीक-ठाक करती थी, अपनी इच्छानुसार कमरे को सजाती थी। मेरी कमीजें निकालकर बटन टाकती थी। रसोईघर मे जाकर चाय बनाती थी।

उसकी मधुर आवाज, उसके शरीर की सुगन्ध, उसका स्वभाव, मेरे जीवन रूपी पूंजी का एक भाग बन चुके थे। उसकी मुस्कान मानो मेरी 'उंगलियों' के पोरों पर नाचती रहती थी। और मैं उसका बनाया खाना भी चाह से खाने लगा था।

एक रविवार के दिन सवेरे के समय वह हमारे घर आई थी उसने और ममी ने मिलकर खाना बनाया। मैं खाना खाकर सो गया। शाम के समय परमेश्वरी के साथ पिक्चर जाने का कार्यक्रम था। अचानक बड़े-बड़े ठहाके सुनकर मेरी नींद खुल गई। सामने दूसरी खाट पर बैठी-बैठी पर-मेश्वरी और ममी आपस मे बातें करते हुए जोर-जोर के ठहाके लगा रही थी। न जाने इतनी प्रसन्नता वे कहां से लायी थी। मुझे जागकर करवट बदलकर उन्हें देखता हुआ परमेश्वरी ने देख लिया और क्षण भर के लिए वह सहम भी गई, पर दूसरे ही क्षण ममी के साथ बातों में इतनी तो व्यस्त हो गई कि मुझे भी उसने भुला दिया।

अधूरी नींद मे जागने पर बहुत देर तक मैं उनकी बातें और उनके ठहाके सुनता रहा। मेरे मन पर न जाने क्या बीत रही थी। मेरी नसें खिंचने लगी, मेरा कोमल हृदय पत्थर बनने लगा और खाट पर लेटे-लेटे ही मैंने निर्णय कर लिया कि मैं परमेश्वरी से विवाह नहीं करूंगा।

नीचा दिखाने के लिए उन्होंने अधिक दहेज देकर एक सुन्दर इन्जीनियर युवक ढूंढ लिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं की समाज की दृष्टि में वह मुझसे एक पेड़ी ऊंचाई पर था।

उसका पति उसे हमारे यहां छोड़कर अपने ऑफिस चला गया था। फिर रात को उसे लेने तथा रात के भोजन के लिए आने वाला था।

कैसे हो ? उसने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा।

तुम सुनाओ, तुम कैसी हो ?

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, बस कुछ सोचती रही।

अचानक उसने कहा—तुमने मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी ?

एक क्षण को लगा सीधा सवाल सुनकर मैं कांप गया। परमेश्वरी की आंखों से दृष्टि न मिला सका। उठकर खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। कोई उत्तर नहीं दे सका।

परमेश्वरी ने दृढ़ स्वर से कहा—बताओ, मेरा क्या दोष था ?

मैंने स्वयं को सम्भाल लिया—परमेश्वरी, मैंने तुम्हें नहीं वरन् अपने आप को सजा देना चाहा था।

परमेश्वरी ने कुछ भी नहीं समझा, समझने का बहुत प्रयत्न भी नहीं किया। वह उठकर मम्मी के पास रसोईघर में चली गई।

परमेश्वरी के कमरे में से चले जाने पर मैंने अनुभव किया कि जीवन में मैंने क्या खोया था। मैंने केवल परमेश्वरी को ही नहीं खोया था अपितु अपने अन्दर वाले व्यक्ति को भी खो बैठा था। इस जीवन में मैं कभी भी पूर्ण नहीं हो सकूंगा, सदा अपूर्ण ही रहूंगा।

न जाने क्यों लोगों ने मुझे सदा ही गलत समझा है। मैंने कभी उन्हें समझने का प्रयत्न भी नहीं किया है। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि इस संसार में कोई भी इन्सान दूसरे इन्सान को समझ नहीं सकता।

मेरे फ्लैट के कमरे में ममी का एक चित्र टंगा हुआ है। आते-जाते अचानक मैं उस चित्र के सामने खड़ा हो जाता हूं फिर आगे बढ़ जाता हूं, पर फिर लौट आता हूं उस चित्र के सामने और पूछने लगता हूं उस चित्र से—ममी, आपने ऐसा क्यों किया? बताओ ममी आपने ऐसा क्यों किया?

नहीं, ममी आप नहीं जानती। तब आप जवान थी और मैं दस-बारह वर्षों का बालक। एक बार मैं बहुत बीमार हो गया था। घर मे डाक्टर आया था, वह आप से कुछ प्रश्न पूछ रहा था। आप उन प्रश्नों का उत्तर दे रही थी। आप समझ रही थी कि मैं सो रहा हूं पर मैं जाग रहा था और सब सुन रहा था। आपने डाक्टर से कहा—जब यह मेरे पेट मे था, तब इसका बड़ा भाई अभी छोटा ही था। मैंने गर्भ-पात कराने के लिए कुछ गर्म दवाईयों का सेवन किया था। इसकी बीमारी पर उन दवाओं का प्रभाव तो नहीं पड़ा है?

डाक्टर ने क्या कहा यह तो मैं भूल गया हूं। पर ममी, आपका वह वाक्य न केवल मेरे कानों ने सुना, बल्कि मेरे सारे शरीर ने सुना। मेरी आत्मा ने सुना। यहां तक कि मेरे प्रत्येक नख तथा प्रत्येक रोम-रोम ने सुना, और वह वाक्य बाद मे सदा मेरे साथ रहा। हर क्षण, हर पल कभी वह भंवरे के समान और कभी तोप के गोले सा मुझे कपाता रहा। नहीं ममी, मैं उस वाक्य को कभी भूल नहीं सकूंगा।

ममी, आपकी मृत्यु के बाद मैंने आपको क्षमा कर दिया। पर उस अनुभूति का अभी तक मानों मैं मनो बोझ सा अपने कंधों पर उठाए फिर रहा हूं, कि मैं इस ससार मे बिन बुलाया मेहमान हूं, मैं यहां के लोगों और समारोहों मे पराया हूं। मेरी इस ससार मे कोई आवश्यकता नहीं है। मैं जीवन का अर्थ खो बैठा हूं। मैं मानसिक रूप से बीमार हूं, और मैं समझता हूं कि इस ससार के लोग मकोड़े हैं जो स्वयं को महत्वपूर्ण वस्तु समझते है। नहीं तो, हमारा अस्तित्व इस विश्व-मण्डल मे वैसा ही है जैसा हमारे ससार मे चीटियों का। ☐

कुछ बिस्कुट निकालता है और खिड़की के पास बैठकर, धीरे-धीरे, एक-एक घूंट कर चाय पीता है। प्रातः के उन शान्त और निश्चित क्षणो मे, वह चाय उसके शरीर मे प्रफुल्लता भर देती है, और वह एक एक घूंट के बीच कुछ मिनटो का अन्तर रखता है। अनुमानतः आधा घंटा उसे चाय पीने मे लग जाता है, पर उस चाय का स्वाद चौबीस घंटे उसके होंठो पर रहता है।

खिड़की से बाहर देखते हुए, शुद्ध हवा का सेवन करते हुए, वह मनम मे एक नए जीवन की उत्पत्ति होती सी अनुभव करता है। उसे लगता है, आज कुछ होगा। क्या होगा? यह, वह नही जानता है। केवल अन्तस मे एक मधुरी सी अनुभूति होती है कि आज कुछ नया घटेगा। ऐसा विचार नित्य प्रति उसके मन मे नये सूर्य सा उभरता है और वह अत्यन्त प्रसन्न होने लगता है। उसे किसी से कोई शिकायत नही होती। उसे सब कुछ मोहक तथा मधुर लगता है।

धीरे-धीरे लोग जागने लगते है, जैसे मकोड़े किसी मे से निकल रहे हो। शान्ति शोर मे बदलने लगती है। कुछ बच्चे रोते है। कोई पुरुष अपनी पत्नी को आवाज देता है, कोई स्त्री नौकरानी को डाटती है। अख-बार वाला आता है, दूध वाला आता है। कोई रेडियो चलाता है तो कोई टेप-रिकार्डर। यह प्रभुदास का ही परिवार है। किसी समय उसे लगता था कि ये सब उसके ही अंग है, जैसे पेड़ की कई डालियाँ होती है। पर अब वे सब अलग पेड़ है, स्वतन्त्र और उनमे कोई सम्बन्ध नही है। उसके बेटे पोते, पोतियाँ, उसकी अपनी पत्नी जिसके साथ उसने अपने जीवन के चालीस वर्ष बिताए-मानो सब दूर से लम्बी आवाजें बन गए है। बहुत, जो पहले घरो से आती है इस घर की आवाजें बन गई है। और वह जो अकेला था, एक पत्थर बन गया है। उसकी पत्नी की, नौकरो की कुत्ते और डाटने की आवाजें आती रहती है। हर बार अपने टूटने और बच्चों के बदलने होती है। प्रभुदास के लिए वे अनजाने स्वर अपरिचित हुए और बन गए

उनकी सम्मतियो का आदर करते थे ।

वे दिन कहा गये ? अतीत क्या होता है ? कभी—कभी प्रमुदास खिड़की के बाहर बादलो को गुजरता हुआ देखता है । एक सावन के बाद दूसरा सावन आता है । पर केवल इन्सान का जीवन ही ऐसा क्यो है ? जो गुजर गया सो गुजर गया! अब तो प्रमुदास अलमारी से अपने कपडे भी स्वय ही निकालता है । कभी यदि कमीज का बटन टूटा देखकर आवाज देता है- पोपटी ज़रा यह बटन तो टाक कर दे जाओ । पोपटी उत्तर देती है अभी तो बच्चो को दूध पिला रही हू । और फिर पोपटी भूल जाती कि पति ने उसे आवाज दी थी । कभी तो दिन-दिन भर वह पति के कमरे मे पैर तक नही रखती है । यदि कभी प्रमुदास मधुर स्वर मे कहता है—आज तो सारा दिन तुम्हे देखा तक नही । तो पोपटी के चेहरे पर रेखाए उभर आती है, और व्यग्य भरे स्वर मे कहती है–मैं आपकी तरह बेकार थोडे ही हू। एक मिनट की भी फुर्सत नही मिलती । आपकी बहुए तो अपने पतियो मे ही पूरी हैं । सब बच्चों की देखभाल तो मुझे ही करनी पडती है ।

प्रमुदास को केवल एक बात समझ मे आती है कि वह बेकार है । अन्य सब व्यस्त हैं । ऐसा क्यो हुआ ? कैसे हुआ ? वह भी व्यस्त रहना चाहता है, पर वे लोग उसकी बातें सुनी अनसुनी कर जाते हैं । घर मे छोटे बच्चो की बातें भी सब लोग ध्यान से सुनते हैं । तो क्या प्रमुदास की एक बच्चे जितनी भी समझ नही है ? प्रमुदास के मन पर बडी ठेस लगती है । वह बिना होठ हिलाये, बिना आवाज किये बेटो से कहता है—तुम लोग स्वयं को बहुत होशियार समझते हो । पर आज तुम लोग जो कुछ भी हो, वह मेरे परिश्रम का फल है । तुम लोगो को सब पक्का-पकाया मिला है । बना-बनाया घर मिला है रहने को । पर मुझे मिट्टी से सोना बनाने के लिए कितनी साधना करनी पडी । और जानते हो अपने समय मे मेरा कितना प्रभाव था? मेरे सामने यदि मेरा मैनेजर भी आता था तो उसका सारा शरीर कापता था । मैं आफिस मे प्रवेश करता था तो ऐसी शान्ति छा जाती थी

□

ही बच्चा रोने लगता है। पोपटी दूर से ही चिल्ला कर कहती है–आपको, बच्चों को गोद में लेना आता हो तो बच्चे भी आपके साथ खेलें। बच्चों को तो जैसे चिकोटियाँ काटते हैं। प्रभुदास घबरा कर बच्चे को पलंग पर लिटा देता है।

JC 6 71
26 U वि

दोपहर का खाना भी प्रभुदास अकेला ही खाता है। पोपटी को तो बहुओं के साथ खाना खाने में आनन्द आता है। वही तो समय होता है घर में स्त्री गुलम बातें करने का। खाना खाकर वह अपने कमरे में आकर लेटता है। समाचार-पत्र की हेड लाईनस पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आ जाती है।

सन्ध्या होने से पहले ही घर में कोलाहल मच जाता है। बच्चे स्कूल से लौटे हैं। कोई बच्चा स्कूल में पुस्तक भूल आया है, तो कोई किसी बच्चे से लड़-झगड़ कर अपनी कमीज फाड़ आया है। कोई बहू अपने बच्चे के लिए मोसम्बी का रस निकाल रही है, कोई अपने बच्चे के लिए दूध में बोर्न-वीटा मिला रही है तो कोई हार्लिक्स बना रही है। केवल इस समय बहुएं अपने बच्चों के लिए कुछ तैयार करती हैं। अन्यथा बच्चों की सार-सम्भाल का काम पोपटी पर है। इस समय तो बहुओं के आपस में कोई हाद [illegible] से [illegible] होती है। एक तो इतना रस निकालेगी कि मनाने, मिन्नतें और डांट डपट के उपरान्त भी बच्चा वह पी नहीं सकेगा और जूठा रस फेंकना पड़ेगा। बोर्न-वीटा या हार्लिक्स की भी यही स्थिति होती है। प्रभुदास बाथरूम से होकर लौटता है तो नौकर चाय और केक या बिस्कुट ले [illegible] है। प्रभुदास को दोपहर की चाय के साथ मिठाई पसन्द थी। वह [illegible] सिकन्दरपुर से सेव की मिठाई मंगवाकर रखता था। पर अब इस घर में मिठाई किसी को नहीं भाती। मिठाई का नाम सुनते ही वे [illegible] नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। आजकल प्रभुदास की रुचि-अरुचि का कोई अर्थ नहीं रहा है।

सन्ध्या का अंधेरा उतरने से पहले [illegible] बदलने लगता है। [illegible] की तैयारी करने लगते हैं। [illegible] एक-एक कर [illegible] हैं। [illegible]

तो बच्चा रोने लगता है । पोपटी दूर से ही चिल्ला कर कहती है-आपको, बच्चों को गोद में लेना आता हो तो बच्चे भी आपके साथ खेलें । बच्चों की तो जैसे चिकोटियां काटते हैं । प्रमुदास घबरा कर बच्चे को पलंग पर लिटा देता है ।

दोपहर का खाना भी प्रमुदास अकेला ही खाता है । पोपटी को तो बहुओं के साथ खाना खाने में आनन्द आता है । यही तो समय होता है घर में स्त्री सुलभ बातें करने का । खाना खाकर वह अपने कमरे में आकर लेटता है । समाचार-पत्र की हेड-लाईनस पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आ जाती है ।

सध्या होने से पहले ही घर में कोलाहल मच जाता है । बच्चे स्कूल से लौटे हैं । कोई बच्चा स्कूल में पुस्तक भूल आया है, तो कोई किसी बच्चे से लड़-झगड़ कर अपनी कमीज फाड़ आया है । कोई बहू अपने बच्चे के लिए मौसम्बी का रस निकाल रही है, कोई अपने बच्चे के लिए दूध में बोर्न-वीटा मिला रही है तो कोई हार्लिक्स बना रही है । केवल इस समय बहुएं अपने बच्चों के लिए कुछ तैयार करती हैं । अन्यथा बच्चों की सार-सम्भाल का काम पोपटी पर है । इस समय तो मानो वे आपस में कोई होड़ लगाने में व्यस्त होती है । एक तो इतना रस निकालेगी कि मनाने, मिन्नतों और डांट डपट के उपरान्त भी बच्चा वह पी नहीं सकेगा और जूठा रस फेंकना पड़ेगा । बोर्न-वीटा या हार्लिक्स की भी यही स्थिति होती है । प्रमुदास बाथरूम से होकर लौटता है तो नौकर चाय और केक का स्लाईस ले आता है । प्रमुदास को दोपहर की चाय के साथ मिठाई पसन्द थी । वह सदा शिकारपुर से सेव की मिठाई मंगवाकर रखता था । पर अब इस घर में मिठाई किसी को नहीं भाती । मिठाई का नाम सुनते ही वे लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं । आजकल प्रमुदास की रुचि-अरुचि का कोई अर्थ ही नहीं रहा है ।

सध्या का अंधेरा उतरने से वायुमण्डल बदलने लगता है । सब रात की तैयारी करने लगते हैं । उसके बेटे एक-एक कर आने लगते हैं । वे

जीने का साधन

आज अन्नू का पत्र आया है। पहली पंक्ति मे लिखा है—'सुन्दर, अब तुम दमयन्ती से कभी नही मिल सकोगे।'

मैंने पत्र पूरा नही पढ़ा, उठकर खिड़की के पास आकर खड़ा हो गया। दूर आकाश मे एक पक्षी उड़ रहा था। अकेला, पख फैलाए, निश्चिन्त, मानो सदा इसी प्रकार हवा मे तैरता रहेगा। और मैंने नीचे गली की तरफ देखा। मोड़ पर नगर-पालिका का नल था। वहा स्त्री–पुरुषो की डोल तथा अन्य बरतन लिए हुए एक लम्बी लाईन बनी हुई थी। कुछ स्त्रिया फुटपाथ पर कपड़े धो रही थी।

मैं खिड़की छोड़कर पुस्तको की 'शेल्फ' के पास आकर खड़ा हो गया। कुछ पत्र–पत्रिकाओ का कला आलोचक हू और प्राप्त होने वाली पुस्तकें वे समालोचना के लिए मुझे देते हैं। इस प्रकार आने वाली पुस्तको से मेरा एक निजी पुस्तकालय बन गया है। मुझे कलाकारो के वे चित्र सग्रह करने का भी चाव है जिनमें वे कला द्वारा अपने भाव के अन्तस प्रदर्शित करते हैं। रगमच के कलाकारो के भिन्न–भिन्न प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हुए चित्र अथवा नर्तक-नर्तकियो के नृत्य करते हुए चित्र जिनमें उनकी देह आत्मा मे लीन हो जाती है। वे गलियो मे निरर्थक दौड़ धूप करने वाले लोगो से कितने भिन्न है। मैने पुस्तको मे से एक 'अॉल्बम' निकाली जिसमें विश्व प्रसिद्ध नर्तक–नर्तकियो के नृत्य मुद्रा में चित्र थे। उस अॉल्बम के अन्तिम पृष्ठ पर ही दमयन्ती का नृत्य मुद्रा मे एक चित्र था। वह चित्र तब का था जब वह छोटी थी, सत्रह वर्ष की, और उसी विश्वविद्यालय मे नृत्यकला की

शान्त को सार्थक बना रहा है।

"तुम कभी–कभी इतनी शान्त, इतनी उदास क्यों बन जाती हो ?"

"गुरुदरदा ······ " इस एक शब्द से अधिक वह कुछ नहीं कह पाती थी। केवल आंखें उठाकर मेरी तरफ देख भर लेती थी और फिर आंखें झुका लेती थी।

पर कभी–कभी तो वह अत्यन्त उत्साहित हो उठती थी। मुस्कराती हुई यूं बातें करने लगती थी जैसे कोई पहाड़ी झरना कल-कल करता बह रहा हो। उत्साह से भरी उसकी आंखें बड़ी-बड़ी सी प्रतीत होने लगती थी गर्दन झूमने लगता था। ऐसा लगता था कि शान्त बैठे-बैठे भी मानो उसकी देह नृत्य कर रही है।

उसने बताया था कि जब वह सात वर्ष की थी तभी से नृत्य सीखना आरम्भ किया था। उसकी मां तो उसे तब छोड़ कर संसार से चल बसी थी जब वह बहुत छोटी थी और उसके पिता एक गांव की पाठशाला में प्रधानाध्यापक थे। उड़ीसा का वह भाग नृत्य की एक परम्परा के लिए प्रसिद्ध था, और एक विद्वान नृत्य शास्त्री अपनी वृद्धावस्था में उसी गांव में एक नृत्यशाला चलाता था।

अन्नू उसकी निकटतम सहेलियों में से थी। उसी ने मुझे बताया था कि दमयन्ती का हर अंग सदा नृत्य करना चाहता है। प्रभात वेला उठकर वह घंटा–डेढ़ घंटा प्रतिदिन नृत्य का अभ्यास करती थी। कुर्सी पर अनमनी सी बैठी दूसरों की बातें सुनते हुए भी उसके पैर स्वतः ही चलने लगते थे। खिड़की के पास खड़ी पेड़ों के पत्तों का नृत्य देखती रहती या फिर आकाश में तैरते पक्षियों की तरफ निहारती रहती थी। कभी भी सहेलियों की खिल–खिलाहट या ठहाकों में वह सम्मिलित नहीं होती थी। सदा एकान्त में कुछ अनुभव करती रहती थी।

अन्नू ने बताया था कि सांसारिक बातों में वह निपट भोली–भाली है। कभी नाश्ता करना भूल जाएगी तो कभी चाय पीना। सहेलियां यदि

मैं चौंक गया था ।

"वह यहीं रहती है । साल भर पहले वह मुझे मिली थी, फिर नहीं मिली है । बीच मे सुना था वह बीमार थी । इसी बहाने हो आते हैं ।"

महल समान घर था दमयन्ती की ससुराल । संगमरमर जड़ा बैठक का कमरा । परिवार के वयोवृद्धों के तैल-चित्र दीवारों पर टगे हुए थे । धरती पर मोटे मोटे गलीचे । छत से लटकते बत्तियों के झाड़-फानूस ।

दमयन्ती को देखकर मैं आश्चर्य-चकित सा हो गया । पीला चेहरा, दुबलाया शरीर, निरर्थक कुछ ढूंढती आंखें । वह नर्तकी के बजाय किसी सम्पन्न घर की बीमार बहू लग रही थी ।

"दमयन्ती, क्या तुम स्वस्थ नहीं हो ?" मैंने पूछा

दमयन्ती ने मेरी तरफ देखा हमारी आंखे मिली । उसने आँखें झुका लीं और स्वयं को सम्भालने के लिए पन्नू से बातें करने लगी ।

दमयन्ती ने उस छोटी सी भेंट के समय मुझ से एक शब्द भी बात नहीं की । विदा लेते समय वह चांदी की थाली मे पान लेकर मेरे सामने आ खड़ी हुई । मैने देखा वह मेरे चेहरे मे घूर रही थी । मैं मुंह फेर कर पन्नू के पीछे चलने लगा ।

पीछे से आवाज़ आयी–"सुन्दरदा ।"

मै मुड़कर खड़ा रहा

दमयन्ती ने मेरे पास आकर कहा–"बुरा मत मानिएगा, सुन्दरदा ।"

और मैने देखा उसकी आंखो मे आंसू तैर रहे थे । फिर उसने दब-दबी आवाज मे कहा– "मै आपको सदा याद करती हूं ।" और उसने साड़ी के खिसकते पल्लू को ठीक कर सिर पर लिया ।

हँसी मे पन्नू ने कहा– "दमयन्ती ने तुम से बात नहीं की, पर मुझ से तुम्हारे विषय मे सब कुछ पूछा ।"

□

मैं चौंक गया था।

"वह यहीं रहती है। साल भर पहले वह मुझे मिली थी, फिर नहीं मिली है। बीच में सुना था वह बीमार थी। इसी बहाने हो आते हैं।"

महल समान घर था दमयन्ती की ससुराल। संगमरमर जड़ा बैठक का कमरा। परिवार के वयोवृद्धों के तैल-चित्र दीवारों पर टंगे हुए थे। धरती पर मोटे मोटे गलीचे। छत से लटकते बत्तियों के झाड़-फानूस।

दमयन्ती को देखकर मैं आश्चर्य-चकित सा हो गया। पीला चेहरा, दुबलाया शरीर, निरर्थक कुछ ढूंढती आंखें। वह नर्तकी के बजाय किसी सम्पन्न घर की बीमार बहू लग रही थी।

"दमयन्ती, क्या तुम स्वस्थ नहीं हो?" मैंने पूछा

दमयन्ती ने मेरी तरफ देखा। हमारी आंखें मिली। उसने आँखें झुका लीं और स्वयं को सम्भालने के लिए अन्नू से बातें करने लगी।

दमयन्ती ने उस छोटी सी भेंट के समय मुझ से एक शब्द भी बात नहीं की। विदा लेते समय वह चांदी की थाली में पान लेकर मेरे सामने आ खड़ी हुई। मैंने देखा वह मेरे चेहरे में घूर रही थी। मैं मुंह फेर कर अन्नू के पीछे चलने लगा।

पीछे से आवाज़ आयी—"सुन्दरदा।"

मैं मुड़कर खड़ा रहा

दमयन्ती ने मेरे पास आकर कहा—"बुरा मत मानिएगा, सुन्दरदा।"

और मैंने देखा उसकी आंखों में आंसू तैर रहे थे। फिर उसने अध-कचरी आवाज़ में कहा—"मैं आपको सदा याद करती हूं।" और उसने साड़ी के खिसकते पल्लू को ठीक कर सिर पर लिया।

टैक्सी में अन्नू ने कहा—"दमयन्ती ने तुम से बात नहीं की, पर मुझ से तुम्हारे विषय में सब कुछ पूछा।"

मन्नू ने ही बात आरम्भ की– "हम आज से दमयन्ती के सम्बन्ध में बातें करने आए हैं।

"तुमने टेलीफोन पर बताया था कि आप लोग उसके साथ पढ़ते थे।"

हमारी बातें सुनने के पश्चात उसने अपनी बाह मोड़ कर अपनी सोने की घड़ी की तरफ देखा। मन्नू की तरफ, फिर मेरी तरफ देखा।

"आप की बात पूरी हुई अब मेरी बात सुनिए। आप लोग मेरी बहू के शुभचिन्तक हैं मैं इसी लिए कह रहा हूँ। आप लोगों को उसे समझाना चाहिए। वह एक भारतीय नारी है। भारतीय नारी अपने कर्तव्यों को अपने अधिकारों से ऊंचा समझती है। और हमारे सम्मिलित हिन्दू परिवार की यही जड़ है। यदि जड़ को कीड़ा लग गया तो सारा पेड़ सूख कर उजड़ जाएगा।"

"पर सत्य बिना दमयन्ती मानसिक रूप से उजड़ रही है।" मन्नू ने कहा।

"अगर यह सत्य है तो दोष उस का है। जो कुछ अच्छे से अच्छा एक इन्सान को मिल सकता है वह सब हमने उसे दिया है। बताइए, इतना सुख इस देश में कितनों को प्राप्त है? उसके पास अलग से अपनी नौकरानी है। सैकड़ों में साड़िया है, इतने आभूषण है जितने किसी छोटी रियासत की रानी के पास होंगे। एक स्त्री को इससे अधिक और क्या चाहिए? शायद उसके स्वभाव में कुछ कमी है। उसे परिस्थितियों के अनुसार स्वयं को ढालना चाहिए। घर में और भी तो बहुए हैं।

मैंने कहा– "पर आप तो कला के समर्थक हैं, जितनी ही कला-सहदाए आप के फन्दे में चलती हैं।"

"यह बात और है।" उसने मेरी तरफ ध्यान से घूर-कर देखते हुए कहा– "हर सम्मानित परिवार की अपनी परम्परा होती है।"

हम लोग उठ खड़े हुए। वह हमें देखते सहम रहा था।

बीते दिन

वह उकड़ू बैठा था। वह शान्त, अपने घुटनो पर कुहनिया टिकाए तथा आपस मे जकड़े हुए दोनो हाथो पर अपनी ठोडी टिकाए एकटक चिता की तरफ निहार रहा था। उसके बाल बिखरे हुए तथा लाल-लाल आखें फटी हुई थी। मानो वे आश्चर्य से कोई अद्‌भुत दृश्य देख रही हो। धूप चमक रही थी। पास मे धीमी चाल से नदी बह रही थी।

आग और धूप की तपन उसके शरीर को सेंक रही थी। उसके नगे पैरो के तलवो मे मानो आग जल रही थी। वह ऐसे निहार रहा था मानो वह कुछ भी नही देख रहा हो, कुछ भी नही सोच रहा हो।

चिता मे अचानक एक "ठांय" की आवाज हुई और एक लकडी अपने स्थान से नीचे गिर गई। उसने चारो तरफ देखा। सब कुछ इतना शान्त था मानो यह कोई अन्य ससार था, जिसका वह अभ्यस्त नही था।

उसे ऐसा लगा मानों दो जानी-पहचानी आखे उसकी तरफ निहार रही हैं। स्पर्श, जिसका वह अभ्यस्त था उसके शरीर को गरमा रहा है। दो होठ बोलने का प्रयास कर रहे हैं।

उसके अन्तःकरण ने कहा-अच्छा हुआ कान्ता, तुमने मुझ से पहले संसार त्याग दिया। नही तो, ये लोग तुम्हें कई कष्ट देते। स्त्री का अकेले जीना बहुत कठिन है।

मानो झीनी सी फुसफुसाहट मे दूर से आवाज आई-साथ जीना भला क्या सरल है?

पूछो।

सच-सच बताओगे ?

क्या मुझ पर विश्वास नहीं है ?

नहीं, उम्र बढ़ने के साथ-साथ इन्सान झूठ बोलने का इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसे सच और झूठ में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता है।

मैं तुमसे सच ही कहूंगा।

तो बताओ, क्या तुम्हें मुझ से प्यार था ?

पुरुष सोच में डूब गया। वह बहुत समय तक सोचता रहा।

कान्ता ने निश्वास छोड़ते हुए कहा—मैं जानती थी कि तुमने कभी मुझे प्यार नहीं किया था। जब भी तुम्हें मेरी जरूरत महसूस होती थी तुम्हारे होंठों पर प्यार भरे बोल स्वतः आ जाते थे।

अब स्त्री के स्वर मे सन्तोष झलक रहा था—मुझे प्रसन्नता है कि तुम मुझे प्यार करते थे ।

अचानक हवा का एक तेज झोंका आया और चिता की आग से एक डरावनी सी आवाज के साथ एक लपट आसमान की तरफ उठी ।

पुरुष को लगा जैसे सब समाप्त हो गया । उसने व्याकुल मन तथा सूनी-सूनी आंखों से चारो तरफ देखा । पीपल के पेड़ की डालिया आपस मे टकरा-टकरा कर शोर मचा रही थी । धीमी चाल से चलती लहरो मे तेजी आ गई थी । पुरुष ने अपना मु ह अपने हाथो मे छिपा लिया ।

पुरुष को लगा न जाने कितने युग बीत गए होगे । अचानक उसने महसूस किया कि कोई उसे बुला रहा है । उसने आखें खोलीं अपने हाथो को देखा, वे राख जैसे मैले थे । हाथ खाली थे और उगलियां नि.शक्त । ये खाली हाथ ! ...... उसने अपने अन्तस मे कुछ खाली-खाली सा महसूस किया । अपने विचारो मे अवरोध उत्पन्न करने वाली आवाज सुनी · एक बार-दूसरी बार तीसरी बार बाबूजी बाबूजी · बाबूजी !

उसने धीरे से गरदन उठाकर देखा, पास ही उसका बडा लडका खडा था जो सिर मु डे होने के कारण भयानक लग रहा था । पुरुष ने सामने देखा, उसका छोटा लड़का अपने रिश्तेदारो और मित्रो के साथ उसकी तरफ आ रहा था ।

उसने बडे लडके की आवाज सुनी --सुनिए बाबूजी, अब चलें, यहा सब कार्य पूरा हो गया ।

पुरुष आश्चर्य से अपने बेटे की तरफ देख रहा था, ये इन्सान, जो कुछ समय पहले उसे कितने अपने निकट तथा अपने लग रहे थे, जो उसके साथ-साथ कितनी दूर से आए थे एक लाश को अग्नि सुपुर्द करने! जिन्होने कितनी सहानुभूति जताई थी उसके साथ ! पर इस समय वे सब उसे पराये-पराये, रुखे और भावहीन लग रहे थे ।

उसका शरीर सो रहा था

पलंग पर सफेद चादर बिछी हुई थी। तकियों को ठीक करके रखा गया था। पैरों की तरफ ओढ़ने के लिए खेस भी रखा गया था। मच्छर-दानी लगी हुई थी। राजू कमरे में अपने कपड़े बदलने के लिए आया था, पर कपड़े बदले बिना ही वह कुछ देर के लिए पलंग की तरफ देखता रहा और फिर लौट आया, बैठक के कमरे में।

रीना मेज के सामने कुर्सी पर बैठी कापियाँ जाँच रही थी। उसका मुँह दीवार की तरफ था। उसके हाथ में लाल पेंसिल थी और आँखों पर चश्मा। यह चश्मा वह केवल पढ़ने या लिखने के समय ही लगाती थी। वह हलके रंग की सूती साड़ी पहने थी और उसकी लंबी चोटी पीछे लटक रही थी।

राजू अपने मन में एक अजीब-सी उदासी महसूस कर रहा था। कभी-कभी पुरुष के मन में एक अजीब सी उदासी, एक अजीब-सी उधेड़-बुन उत्पन्न होती है, जिसे वह समझ नहीं पाता। उसने महसूस किया कि वह पलंग पर जाकर लेटेगा पर उसे नींद नहीं आएगी। वह करवटें बदलता रहेगा। वह आकर रीना के पीछे खड़ा हो गया।

राजू ने कहा—"अभी और कितने दिन चलेगा, यह कापियाँ जाँचने का काम?"

रीना ने मुड़कर नहीं देखा। वह अपने काम में लगी रही। उसने कहा—"दो-तीन दिन। आधे से ज्यादा जाँच चुकी हूँ।

चलते-चलते अचानक वह रास्ते के बीचोबीच रुक गया। उसका मित्र अक्षय, यहाँ प्राय. आता है। इसी स्थान पर अक्षय ने कई बार राजू से विदा ली है। अक्षय उसका हाथ पकड़कर कहता है-"तुम भी ऊपर क्यो नही चलते ?"

—"नही यार।" राजू कहता।

—"पर क्यों ?" ...

राजू हँसकर कहता-"नही, मन नही मानता।"

अक्षय रुष्ट होकर कहता-"तुम अठारहवी शताब्दी के इन्सान ही बने रहना।"

एक शाम पास के ही किसी रेस्टोरेंट मे अक्षय और राजू बैठे बीयर पी रहे थे। अक्षय ने कहा "सच्ची स्त्री वही है, जो पुरुष को तृप्त करने की सभी कलाएँ जानती हो। ऐसी ही स्त्री यहाँ है ऊपर दूसरी मंजिल के फ्लैट मे। मैंने जीवन की श्रेष्ठ घड़ियाँ इस फ्लैट मे बिताई है।"

राजू ठहाका लगाकर हँसने लगा था। वह इतना हँसा कि उसकी आँखों मे पानी आ गया था।

अक्षय अपनी धुन मे था। राजू की उपस्थिति मानो उसके लिए मात्र एक बहाना थी। मद्धिम प्रकाश, मद्धिम संगीत, विस्की का नशा, गर्म पिघलते शरीर, जैसे सब सपने मे घटित होता है-"काली नींद, काली आकृति, शायद मृत्यु भी ऐसी सुन्दर नही होगी..."

राजू के ठहाके बंद हो चुके थे। वह यह सब सुनना नहीं चाहता था। अक्षय का यह रूप उसे अजीब लगता था और अजनबी भी।

राजू ने वहीं रास्ते पर खड़े-खड़े ऊपर की तरफ देखा। छोटे-छोटे पर्दे लटक रहे थे, दूसरी मंजिल के फ्लैट की खिड़कियों पर। उसने अपने दोनों हाथ अपनी पैंट की जेबों में डाले और सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

उसके शरीर, दृष्टि और आवाज़ में नक्ली नशा था। पैसे गिनते समय वह नशा बिलकुल उतर गया था। उस समय वह सुन्दर भी नहीं लग रही थी। लग रही थी केवल "स्त्री"। केवल स्त्री क्या होती है? उसे याद आया, यह वाक्य। उसने एक पुस्तक में पढ़ा था।

राजू ने स्वयं को फुटपाथ पर बैठा पाया। कॉलेज के दिनों में वे ऐसे ही, वनिता के पास एक वृक्ष की छांव में फुटपाथ पर बैठकर बातें करते थे, रीना और वह। कभी-कभी वह अपने मित्रों के साथ भी वहाँ बैठकर बातें करता था। दो संसार थे उसके। मित्रों के बीच वह एक सामान्य इन्सान होता था। वे दुनिया भर की बातें करते थे पर रीना के सामने वह पुरुष बन जाता था। वह केवल स्त्री के विषय में बात करना चाहता था और रीना उसके विषय में, केवल पुरुष के विषय में, बात करना चाहती थी। मित्रगण संसार की हर समस्या पर वाद-विवाद करते थे। बम्बई से लेकर न्यूयार्क तक। इस परिधि में दिल्ली, टोकियो, लंदन और मास्को भी आ जाते थे। चन्द्रमा पर उतरने वाला व्यक्ति और एटम बम से मारे गए लोगों की राख भी आ जाती थी, पर रीना से होने वाली बातें एक सीमा के अंदर ही होती थीं और उस छोटे से संसार के निवासी केवल दो ही प्राणी होते थे, रीना और राजू। वे एक-दूसरे के साथ झूठ भी बोलते थे, पर वह झूठ भी केवल उस सीमा के अंदर और किसी को न आने देने के प्रयासवश ही होता था।

हवा भी वृक्षों को हिला नहीं रही थी। चारों तरफ के भवन अत्यंत शांत थे। गगन बहुत ऊँचा था और रास्ता अत्यंत एकाकी। अच्छा है जो हर व्यक्ति का इस संसार में अपना-अपना घर है। नहीं तो इंसान सदा भटकता ही रहे, यह रास्ता कभी समाप्त ही न हो। शायद यह रास्ता भी भटकता रहे और खुद ही राह भूल जाए। न जाने कितने रास्ते हैं। नहीं, सभी रास्ते एक ही राह की उप राहें हैं।

"तुम विवाह के बाद प्यार करोगे मुझे?" फुटपाथ पर बैठे-बैठे ही

प्रशय तब भी राजू के घनिष्ठ मित्रों में से था। राजू को प्रशय की बातें याद आई थीं। उसने रीना से कहा था–"तुम अपनी जाति की प्रशंसा कर रही हो। पर जानती हो ? कुछ पुरुषों के लिए स्त्री, बाथरूम के कमोड से अधिक नहीं होती।"

रीना ने आश्चर्य से राजू की तरफ देखा था। उसने उसके हाथों को छोड़ दिया था और कुछ दूर हटकर खड़ी हो गई थी। उसका मुंह पीला पड़ गया था।

राजू ने सोचा था कि बेल बटन दो-तीन बार दबाने पर ही दरवाजा खुलेगा, पर उसने अभी बटन पूरा दबाया ही नहीं था कि झट से दरवाजा खुल गया। सामने रीना खड़ी थी। पहले रीना ने ही बात की–"तुम्हारे जाने के बाद मेरा मन कापियाँ जाँचने में नहीं लगा। मैं कहानियों की पुस्तक उठाकर एक कहानी पढ़ने लगी, पर आधे घंटे से दरवाजे पर खड़ी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।

राजू ने आश्चर्य से रीना की तरफ देखा। उसने जल्दी से बेडरूम में जाकर कपड़े बदलने चाहे। रीना के सामने खड़े रहने में उसे कुछ संकोच अनुभव होने लगा। रीना भी उसके पीछे-पीछे चलती हुई बेडरूम में चली आई–"जानते हो कैसी अजीब कहानी पढ़ी ?"

राजू ने मुड़कर पीछे देखा। रीना उसके पास आकर खड़ी हो गई। मानो राजू का स्पर्श चाहती हो। पर राजू सदा की तरह हाथ बढ़ाकर उसे अपनी तरफ खींच नहीं सका।

रीना ने कहा–"एक जापानी कहानी थी। एक जापानी सैनिक घर जा रहा था। बहुत समय वह युद्धभूमि में रहा था और बहुत प्रयत्नों के बाद उसे कुछ दिनों के लिए घर जाने की अनुमति मिली थी। उसे अपनी पत्नी की याद बहुत सता रही थी। वह रास्ते पर पैदल ही जा रहा था कि अचानक हवाई हमले का सायरन बजा। रास्ते पर चलते-चलते दूसरे लोगों की तरह वह भी धरती पर लेट गया। ऊपर से बम बरसने लगे।

"तुम सो गए क्या ?" रीना के मुख पर प्रसन्नता थी और आवाज में प्रतीक्षा। वह बढ़कर पलग के निकट आई—"क्या नहाने में मुझे देर लग गई ? क्या तुम रुष्ट हो गए ?"

वह ड्रेसिंग टेबल के शीशे के सामने आई। पाउडर का डिब्बा उठाकर गर्दन और पीठ पर छिड़का और फिर पलग पर लौट आई। सिर झुकाकर उसने राजू की सांस लेने की, आवाज सुनी। राजू की आंखें बद थी। कुछ अप्रसन्नता और कुछ क्रोध रीना के अतस मे जगा। उसने राजू के चेहरे को देखा—"शायद बहुत थके हुए थे," उसने बुदबुदा कर कहा। वह घूमकर पलग की दूसरी तरफ आई और बत्ती बद कर राजू के पास मे सो गई।

जब राजू ने महसूस किया कि रीना गहरी नीद सो चुकी है, तो उसने आंखें खोली। वह अंधेरे में छत की तरफ देखता रहा। छत मे पखा गोल-गोल घूम रहा था। रीना के शरीर की सुगध पूरे पलग पर फैल गई थी। राजू ने महसूस किया कि चाहे रीना सो रही है और वह स्वय जाग रहा है, पर तब भी उसका शरीर सो रहा है।

वह बहुत देर तक खुली आंखो से अंधेरे मे छत की तरफ देखता रहा।

क्या लिखा है ?

लिखा है बाबूजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, और लिखा है कि हम उन्हें पास बुलालें तो अच्छा। मैं डाक्टर हूं, उनकी देखभाल अच्छी होगी।

मैंने पत्र पढ़े बिना ही कह दिया— ठीक ही तो लिखा है।

चन्द्र ने कहा—पर तुम भी नौकरी करती हो, तुम्हें कठिनाई नहीं होगी ?

मेरे चेहरे पर एक भीनी मुस्कराहट आ गई। विवाह के बाद, ये पति लोग अपनी पत्नी से इतने डरते क्यों हैं ? शायद वे पत्नी से तभी डरते हैं, जब वे उसे गलत समझते हैं। मैंने कहा— बाबूजी हमारे यहां रहे ही कहां हैं। आप दाऊजी को लिख दीजिए कि वे उन्हें सुनील (जेठूतो) के साथ यहां भेजदें।

बाबूजी का एक धुंधला सा चित्र मेरे मानसपटल पर अंकित था। वह एक ऐसे इन्सान का चित्र था जिसका आदर किया जा सकता है। जिसके पास मे खड़े होने पर अनुभव किया जा सकता है कि कोई 'इन्सान' पास में खड़ा है।।

बाबूजी के आने पर जब मैंने उनके चरण छुए तो स्वतः ही मेरे मुंह से निकल गया—बाबूजी, आप कितने दुर्बल हो गए है ! आपने हमें पहले क्यों नहीं सूचित किया ?

बाबूजी ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—इस नाशवान शरीर से इतना मोह क्यों रखा जाए बेटा ! समय बलवान है, हमारी क्या चलेगी।

पुराने समय के लोगों का रहन-सहन कितना सादा था और आवश्यकताएं कितनी कम ! जब सत्तर साल के बाबूजी की तुलना मैं अपने बच्चों से करती थी तो आश्चर्य होता था। बिना घड़ी की सहायता के प्रतिदिन प्रातः चार बजे उठना, स्नानघर में 'गीजर' होते हुए भी ठण्डे

निवृत्त होने वाले थे कि मेरी सास का देहान्त वहीं सिन्ध में हो गया था। उसके बाद भी ससुरजी दो साल सिन्ध में रहे। अन्ततः बच्चों का मोह उन्हें यहां खींच लाया।

एक दिन कालेज से कुछ जल्दी ही लौट आयी थी। नौकरानी की बजाय मैं उन्हें दवाई पिलाने गई।

बाबूजी ने आश्चर्य से पूछा - बेटे, तुम इस समय घर में ?

आज कालेज आधा दिन बन्द है।

तुम्हें इस समय घर का कोई काम तो नहीं ?

नहीं बाबूजी। मैंने उत्तर दिया

कुर्सी सरकाकर बैठ जाओ। तुमसे बातें करने को बहुत मन करता है।

मैं कुर्सी सरकाकर बाबूजी के सामने बैठ गई। बाबूजी कितनी ही देर तक मेरी तरफ निहारते रहे। मुझे लगा बाबूजी जो कुछ कहना चाहते थे, शायद वह भूल गए हैं।

मैंने कहा—बाबूजी, आप कुछ कहने वाले थे।

बाबूजी चौंक पड़े—न जाने मैं किन स्मृतियों में खो गया। बेटी, इन्सान जब अपनी उम्र लांघकर बढ़ता है तो उसकी सबसे अमूल्य सम्पत्ति होती है उसकी स्मृतियां !

अचानक बाबूजी बोले—बेटे जरा और पास सरक आओ।

मैं सरककर और पास हो बैठी।

बाबूजी ने एक विचित्र स्वर में कहा—बेटी तुम्हें देखने से मुझे तुम्हारी सास याद आती है।

मैंने कुछ सकुचाकर कहा—बाबूजी पोतों के नाते उनकी शकल मुझ से न्यारी है।

बाबूजी ने मेरी तरफ देखते हुए कहा– समय बदल गया है न, बुड्ढे वही रह गए हैं। मैं तुम्हारी बात नही करता बेटी, पर कुछ छोटे, बडो को गवार समझने लगे हैं।

मेरी आखो मे आंसू देखकर बाबूजी उठकर खडे हो गए। मुस्कराते हुए कहा–बेटी, तुम्हे उनकी आवभगत के लिए पापड–पानी की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

हा, करु गी। मैंने भी मुस्कराते हुए कहा।

तीसरे पहर बच्चे खेलने चले जाते थे और चन्द्र बीमारो के घरो से होते हुए डिस्पेन्सरी जाते थे। बाबूजी के कमरे से भांति–भांति की आवाजें आती थी। ये वृद्ध लोग अपनी युवावस्था की स्मृतियो का बखान कर बहुत प्रसन्न होते थे। जिसकी स्मृतिया सही तथा अधिक होती थी उसको बड़ा सम्मान मिलता था। कभी–कभी तो कुछ बातो पर बडे-बडे विवाद छिड जाते थे। कोई कहता गाव मे बाढ अमुक वर्ष में आयी थी तो कोई कहता अमुक वर्ष मे। बहुत वाद-विवाद के पश्चात सही वर्ष ज्ञातकर वे लोग बहुत गद्‌गद हो उठते थे। बाबूजी आए हुओ से प्राय: गाव के खास-खास लोगो के विषय में पूछते थे कि वे कहा है क्या करते हैं, आदि-आदि। लोग बताते कि कुछ तो ससार से विदा हो चुके हैं, और कुछ दूर-दूर शहरो या गावों मे बसे हुए हैं। सब कुछ कैसे बदल गया, बूढ़े निश्वास छोडते हुए कहते थे। बूढो की ये बातें सुनकर कभी तो मन ही मन हँसने लगती थी, तो कभी सोचती थी कि यह ससार कितना निष्ठुर है, कि देते–देते आखिर सब छीन लेता है।

एक दिन तीसरे पहर के समय बाबूजी ने मुझे अपने कमरे में बुलाया, कहा–बहू, आज टेंवरमल आया है। वह गाँव का मुखिया था। उसके चरण छूकर आशीर्वाद लो। सिन्ध मे किसी गाँव के घर की बहू पूरे गाँव की बहू मानी जाती थी।

उस दिन दोपहर के समय जब मैं बाबूजी को दवाई देने गई तो बाबूजी ने बहुत धीमे स्वर में कहा— बैठो बहू।

मैं कुर्सी सरकाकर पास ही बैठ गई।

बाबूजी ने कहा—मेरे दिन पूरे हो चुके हैं। इस शरीर से मुक्ति पाने का समय आ गया है।

मैंने हाथ बढ़ाकर उनकी बांह पर रखा वह ठंडी थी।

बाबूजी एकटक मेरी तरफ निहार रहे थे। फिर अत्यन्त गम्भीरता से बोले—बहू, मेरे बक्से में कपड़ों के नीचे एक लाल रंग की डिबिया पड़ी है, वह ले आओ।

मैं डिबिया ले आई। बाबूजी ने अपने हाथों से उसे खोला और कुछ देर उनकी दृष्टि उसमें रखी सोने की नथ, जिसमें लाल मणि जड़ा था, पर अटकी रही। अचानक उन्होंने वह डिबिया मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा—यह तुम्हारी सास की अमानत है।

मैंने डिबिया ले ली। बाबूजी ने सन्तोष की एक दीर्घ श्वास ली और आंखें मूंद ली।

उस रात जब चन्द्र सो गए थे और मैं सोने से पहले ड्रेसिंगटेबल पर बैठकर बालों में ब्रुश कर रही थी, तो मैंने डिबिया से वह नथ निकालकर नथुने के पास रखकर दर्पण में स्वयं को देखने लगी। उस रात प्रथम बार मुझे गम्भीरता से अनुभव हुआ कि मैं किसी परिवार की बहू हूं और कितनी पीढ़ियों की सभ्यता की वारिस हूं।

एक रात जब मैं बाबूजी को दूध देने गई तो दूध पीकर गिलास वापस देते हुए उन्होंने पूछा—बहू, आज कौन सा वार है?

दिन तथा दिनांक का बाबूजी को बहुत कम ध्यान रहता था।

प्रातः जब चन्द्र, बाबूजी को देखने गए तो बाबूजी इस नश्वर संसार से प्रस्थान कर चुके थे, केवल उनका शरीर पलंग पर पड़ा था।

नौकरानी ने घर को व्यवस्थित कर लिया था। मेज पर केवल वही पुस्तकें वैसे ही पड़ी थी।

ये पुस्तकें कहा रखूं ? मैंने स्वयं से पूछा।

ड्राईंग-रूम मे पुस्तको का एक सुन्दर 'शेल्फ' है। याद नही कब चन्द्र ने कुछ हजार रुपये खर्च कर एक 'एनसाइक्लोपीडिया' का पूरा सैट मगवाया था। नसवार रग के कपड़े की जिल्दो पर सुनहरी अक्षरो मे नाम लिखे हुए हैं उन पर। जब यह सैट आया था तो चन्द्र ने हसकर कहा था—जब बच्चे बड़े होगे तो इनसे ज्ञान पाए गे। पर आज तक उन पुस्तको को खोलकर किसी ने भी नही देखा था। नही, मैं ये पुरानी पुस्तकें उन सुन्दर पुस्तको के साथ नही रख सकती। न केवल बच्चे और चन्द्र ही नाराज होगे अपितु मेहमान भी ठिठोली करेंगे।

मैंने मन को समझाया। इन्सान को भावुक नही होना चाहिए। भला हमारे बाद ये पुस्तकें किस काम आए गी। चन्द्र को सिन्धी भाषा आती है, पर उन्हे तो सिर खुजाने का भी समय नही है। मुझे सिन्धी का इतना कम ज्ञान है कि ये पुस्तकें तो मेरे सिर पर से गुजर जाए गी। वैसे भी 'फिजिक्स' की लेक्चरर को कविता की पुस्तको से क्या सरोकार ! और बच्चो का तो प्रश्न ही नही उठता। वे न जाने किस न्यारे समाज मे बड़ें होगे। वह समाज, आज के समाज से भी सर्वथा भिन्न होगा, अतीत से तो कोई तुलना ही नही है।

मैंने पुस्तकें उठाई और बिना आहट किए 'स्टोर-रूम' का दरवाजा खोला। वहा एक आलमारी मे जहा दो-चार पुरानी पुस्तकें रखी थी, ये पुस्तकें भी रखकर अपने कमरे मे लौट आई। बच्चो के कमरे मे झांककर देखा वे पढ रहे थे। मैं जाकर बड़े बेटे के पास बैठ गई और उसे अक गणित समझाने लगी। पर न जाने क्यो मुझसे गलतिया हो रही थी। मेरा मन ठिकाने नही था और मेरी उगलिया बार-बार सूखी आंखो को मसल रही थी। □

अन्य सब मनों में अनजान। कुछ सोच रहा है। अनुभव कर रहा है। उसकी आंखें खुली होते हुए भी बन्द हैं। उसे ऐसा लग रहा है मानों आज कुछ टूट सा गया है—शरीर, आत्मा, स्वप्न, आशाएं, जीवन का अर्थ सब टुकड़े टुकड़े होकर बिखर गए हैं। वह खण्डहर पर खड़ा है। वह स्वयं एक खण्डहर है, केवल अतीत की एक याद।

घर लौटते समय मोनिका ने कार में कहा था—"तुम दोष किसे दे रहे हो। मुझे? पर मैंने तो कुछ भी नहीं किया है। यह तुम्हारे मन का भ्रम रूपी नाग है जो तुम्हें डस रहा है।"

हो सकता है। इस संसार में सब सम्भव है। झूठ और सच में अन्तर ही क्या है? यह मानव मन के वश की बात है कि वह किसे झूठ और किसे सच बताता है। मानव मन के पास स्वयं को भ्रमाने के बहुत से साधन उपलब्ध हैं। कभी-कभी तो जातियों की जातियां झूठ को सच मान कर स्वयं को न्यौछावर कर देती हैं। कभी—कभी मनुष्य झूठ के पीछे भट-कता रहता है। और मनुष्य के मन को कोई नाग डसता है तो सब विस्मृत हो जाता है। केवल विष की टड़क, कड़वापन, पीड़ा, नस—नस का फूलना मस्तिष्क की तपन और शरीर का टूटना—अतीत, भविष्य और वर्तमान का गोल चक्कर में गिरना। उन्मादियों के बजते लाउडस्पीकर की आवाज भी समझ में न आना, केवल शरीर आत्मा में कड़वे विष का चक्कर मारना। मनुष्य को गर्त में खींच ले जाना।

सतीश सोचता रहा कि क्या हुआ था? शायद कुछ भी नहीं हुआ था। पर तब भी कुछ तो हुआ था। इसी कारण तो वह सभा में एक शब्द भी बोल नहीं सका है। वह मोनिका से आंखें नहीं मिला सका है। हर बार सामना होते ही वह आंखें झुका लेता है, मानो वह डर रहा है। पर किस से? किस लिए? वह अपने आप से दूर भाग जाना चाहता है, उस सब से जो अभी तक सुन्दर था। और ऐसे भागते हुए उसने आकर इस बालकनी में शरण ली है। पर यहां भी वह स्मृति से, मन की लहरों से डरे

सतीश इन्वमटैक्स अधिकारी है। इस धनवान मुहल्ले मे उसे मि
हुआ "फ्लैट" भी सरकारी है। सतीश मन ही मन जान चुका है कि
मुहल्ले मे उसके अकेले वेतन के सहारे रहना सम्भव नही है। मोनिका
नौकरी करती है। वह एक विदेशी फर्म मे "स्टेनो" है। उसका वेतन
अच्छा है। दोनो के वेतन से घर चलता है। विवाह के समय मिले दा
मे सतीश ने एक सैकण्डहैण्ड "हैरॉल्ड," कार खरीदी है। उनके पास
स्थायी नौकर है। दोनो "क्लब" के सदस्य है। प्राय दूसरे घरो मे हो
वाली पार्टियो मे जाते है और कभी-कभी अपने घर पर भी पार्टिया
है। ऐसा स्तर रखते हुए कभी-कभी सतीश चिन्तित हो जाता है।
मोनिका का स्वभाव हसमुख है। वह सदा हसती-मुस्कराती रहती है,
सदा उसके होटो पर "लिपस्टिक' लगी होती है। इस कारण सतीश
सब चिन्ताए बहुत कम समय की होती है। उनकी रातें ऐसे व्यतीत हो
है मानो अभी "हनीमून' की चितवृत्ति मे हो। दोनो मे से मोनिका अधि
"डॉमीनेटिंग" है। उसे हर बात के लिए अपने विचार है। उसके लि
जीवन का स्पष्ट अर्थ है, और वह है जीवन का पूर्ण आनन्द उठाना। अ
सब बातें बेकार है। सब आदर्श रोगी मनुष्य को ढाढ़स बधाने व
शब्द है।

प्रति दिन दोनो साथ-साथ कार से ऑफिस के लिए निकलते है
कार मोनिका ही चलाती है। अपने ऑफिस के पास पहुचकर वह क
रोकती है और कार से उतर जाती है। सतीश से हाथ मिलाकर वि
लेती है। ऑफिस की सीढियो पर पहुच कर वह मुडकर हाथ हिलाती
फिर सतीश कार स्टार्ट करता है और अपने ऑफिस जाता है।

शाम को दोनो साथ-साथ घर लौटते है। हवा मे उडते उलझे बा
से थकी हुई मोनिका अत्यन्त सुन्दर दिखाई देती है, और सतीश अप
कोट उतारकर कार की पिछली सीट पर फैक देता है। घर पहुचकर
चाय पीते है और रात के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते है। रात

बर्फ के नीचे छिपा जल दृष्टिगोचर होने लगा है। और इस भय से कि फिर कोई ठण्डी हवा का झोंका न आए—सतीश बेड रूम की तरफ मुड़ा।

बेड-रूम में ड्रेसिंग टेबल के पास नाईट लैम्प जल रहा था। नाईट ड्रेस पहने मोनिका सदा की भांति ब्रुश से अपने बाल संवार रही थी। संसार से अनजान, उस तूफान और लहरों के झटकों से बेसुध, जिन से होकर अभी-अभी सतीश गुज़रा था।

दबे पाँव सतीश बेडरूम में प्रविष्ट हुआ और आकर मोनिका के पीछे खड़ा हो गया। मोनिका ने दर्पण में सतीश को देखा पर कहा कुछ नहीं।

सतीश ने अपने दोनों हाथ मोनिका के कंधों पर रखे और नग्न कंधों पर उन्हें फेरता रहा।

"कहो" मोनिका ने कहा

"मोनिका, आज जो कुछ हुआ, मैं उसे भूलना चाहता हूं।"

मोनिका हंसने लगी, "तुम्हें कहा किसने कि उसे याद रखो?"

सतीश ने कहा, "हंसो नहीं मोनी! जानती हो आज मैंने कितना सहा है, कितना भोगा है! मैं कई बार टुकड़े-टुकड़े हुआ हूं! भ्रम और बेबसी मिलकर मुझे छलते रहे हैं।"

"कैसा भ्रम?" मोनिका ने पूछा

"भ्रम, कि तुम्हारा प्यार एक नाटक है। बेबसी, कि हमारे जीवन में कहीं कोई कमी है।"

मोनिका शान्त रही। मानो वह सम्भलने का प्रयास कर रही हो। फिर एक कटु मुस्कान उसके होंटों पर उभरी। उसने कहा, तुम जब एक अनजान स्त्री के साथ सफर करने आए थे, तो क्या मेरे पास संदेह करने के लिए कोई कारण नहीं था। मैं भी तो संदेह कर सकती थी? मैं भी तुम्हारी तरह विकृत विचारों को पाल सकती थी और अपना तथा दूसरों का "मूड" खराब कर सकती थी!"

से बच नहीं सकते । न तुम, न मैं और न ही हमारे चौगिर्द कि जीवित लोग ··

मोनिका और भी कुछ कहती कि उसने देखा कि सतीश का मुंह पीला होने लगा है । वह उठकर खड़ी हो गई । सतीश के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "सतीश, तुम ठीक तो हो न ?"

सतीश सम्भल गया । उसने स्वयं को टुकड़े-टुकड़े होने से बचा लिया । वह मुस्कराने का प्रयास करने लगा ।

"मोनी, सवेरे "जेली" जमाकर चले थे ···

"तुम खाओगे ? मैं ले आऊं ?"

नहीं, चलो डायनिंग रूम में मिलकर खाएंगे । तुमसे अलग होने में मुझे भय रहा है ।"

मोनिका मुस्करा दी । सतीश ने देखा, वही सदा वाली मुस्कान थी श्रद्धापूर्ण, विश्वास पूर्ण । ☐

सैंकड़ों पुरुष व महिला मित्रों के होते हुए भी, सदा अन्य लोगों के साथ अपने दिन तथा रातें बिताते हुए भी मूल रूप में अकेला व्यक्ति है।

उसे दिन का दौरा भी एक विचित्र स्थिति में पड़ा। वह अपनी बड़ी कार में "ऐयरोड्रोम" जा रहा था और उसके पास में बैठी थी इस सप्ताह की प्रेमिका। वह लम्बी थी, लुभावनी थी, सब काम बड़ी अदा से करती थी। घर पर "पेग" पीकर वे लोग कार में चढ़े थे। सच तो यह है कि मिस्टर चन्दी को पार्श्व में सदा कोई चाहिए था, वह स्त्री हो तो अच्छा। इसमें उसे व्यवसाय के टटरागों से मुक्ति मिल जाती थी और वह अपने एकाकीपन से डरता था। अकेला होने पर वह अति विशिष्ट व्यक्ति (V.I.P.) से बदलकर अति साधारण व्यक्ति बन जाता था। ऐसी सुन्दर, मनभावन किशोरियों की पास में उपस्थिति ध्यान दिलाती थी कि वह सामान्य लोगों से बहुत ऊँचा है।

कार ऐयरोड्रोम की तरफ जा रही थी जहां उसे हांग-कांग की उड़ान (F it) पकड़नी थी। मार्ग में अचानक उसने छाती में पीड़ा होती अनुभव की, पहले थोड़ी से फिर असह्य। उसने हकलाते हुए अपने ड्राईवर से कार नर्सिंग-होम ले चलने को कहा। उसकी सदा मुस्कराती प्रियतमा अवसर की गम्भीरता भांपकर मार्ग में ही उतर गई, चन्दी को अपने भाग्य भरोसे छोड़कर। वह अनुभवी थी।

पूरा एक सप्ताह चन्दी मृत्यु से लड़ता रहा। हर व्यक्ति जहां भी हो जो कुछ भी हो, जीना चाहता है। मिस्टर चन्दी शायद यह जीवन-मृत्यु की लड़ाई जीत न पाता यदि नर्सिंग-होम में उसे शिवानी अर्थात मिसेज रेवडेकर उसकी देखभाल न करती। दस वर्षों की अनुभवी नर्स समझ गई थी कि इस व्यक्ति को किस प्रकार की देखभाल की आवश्यकता है।

वह उसके पास में आकर बैठती थी, उसके बालों में अंगुलियां फेरती थी, उसके हाथ में हाथ देकर बैठी रहती, उसे अपने हाथ से दवाई पिलाती और आवश्यकता पड़ने पर उसके साथ हंसी-मजाक भी करती थी।

मे मन बहलाने के कितने उत्कृष्ट साधन उपलब्ध हैं। बड़े-बड़े होटल, वहाँ होने वाली पार्टियां और सुन्दर नृत्य !

मिस्टर चन्दी लड़कियों को खरीदने का आदी था। उसने तकिए के नीचे से अपना पर्स निकालकर उसमें से एक सौ रुपये का एक नोट निकाला किन्तु जो कुछ उसके मन में था वह, कह न सका। शिवानी की आंखों में, और ललाट पर कोई ऐसा तेज था कि वह इस स्त्री के साथ वैसा व्यवहार कर नहीं सका जैसा वह अपनी महिला मित्रों के साथ करता था। उसने कहा—ये पैसे रख लो, तुम्हें सर्कस में काम आएंगे।

शिवानी ऐसे हसने लगी जैसे वह दस वर्षों की बच्ची हो, और मि० चन्दी छः-सात वर्ष का बालक जो अज्ञानता की बातें कर रहा था। शिवानी ने कहा—सर्कस पर इतने पैसों की आवश्यकता नहीं होती। यह नोट आप अपने पास रखिए।

—卐—

चन्दी कुछ अधिक दिनों के विश्राम से पूरा स्वस्थ हो गया। वह अकेलेपन में फिर उसी जीवन के स्वप्न देखने लगा जब वह हवाई जहाजों में यात्रा करता था। होटल के सुसज्जित कमरों में गदराए शरीर वाली सुन्दर किशोरियां उसके पार्श्व में होती थीं। विभिन्न प्रकार की शराब उसके प्यालों में होती थी। वह जीवन में चलता नहीं था, पर उड़ता था। और अपनी ऊंचाई के नीचे कीड़ियों से रेंगते लोगों पर छिटोली भरी मुस्कान से देखता था।

एक दिन शिवानी ने दवाई पिलाते समय उसे कहा—मेरा एक सप्ताह का अवकाश स्वीकृत हो गया है। कल से मिस लता ही आपकी देखभाल करेगी।

चन्दी विस्मित दृष्टि से उस स्त्री की तरफ देखता रह गया जैसे उसे कुछ समझ नहीं पाया हो।

बड़े डाक्टर का कहना है कि थोड़े दिनों में आपको अस्पताल से छुट्टी दे दी जाएगी। और फिर मिस तारा तो आपकी देखभाल मुझसे भी अधिक ध्यान से करती है।

चन्दी बिलकुल शान्त रहा। जीवन में उसने कभी लड़कियों के सामने अपनी हार नहीं मानी थी। पैसे से सब कुछ खरीदा जा सकता है। यह उसका विश्वास था और अनुभव भी। प्यार, सुख-सुविधाएं, जीवन और मनुष्य सब तो पैसे पर बिकते हैं! पर यह कैसी मूर्ख स्त्री है जो दस हजार को ठुकरा रही है। दस हजार! जिस से उसके मुन्ने का भविष्य बन सकता है। बिलकुल मूर्ख ही लगती है। पर चन्दी में इतना साहस नहीं था कि वह शिवानी से आंख मिला सके।

—※—

प्रात: से शिवानी अत्यन्त व्यस्त थी। एक सप्ताह बाद वह नर्सिंग-होम में आई थी। सवेरे नर्सिंग होम में बड़े डाक्टर लोग "राऊण्ड" पर आते हैं। उस समय नर्सों को सांस लेने का भी समय नहीं होता।

दोपहर को शिवानी और तारा रेस्टरम में सैंडविच के साथ चाय पी रही थी।

तारा ने कहा—दीदी, वह जो मिस्टर चन्दी थे न, बहुत विचित्र व्यक्ति थे।

क्यों? शिवानी ने आश्चर्य से पूछा

उनके कागजों से पता चला कि उनके बहुत बड़े-बड़े व्यवसाय थे। बहुत सा उनका धन बैंकों में जमा है। ऐसे लोग जो इतने बड़े व्यवसाय चलाते हैं बड़े वीर पुरुष होते हैं। पर वे तो बहुत डरपोक थे। कमरे में थोड़ी सी भी आवाज होने पर डर जाते थे। डरते हुए कहते थे, मिस्टर तुम रात को मेरे कमरे में ही रहो। मैं अकेले में डरता हूं।

शिवानी ने स्वभाविक स्वर में पूछा—उसे अस्पताल से कब छुट्टी दी गई?

भूली-बिसरी यादें

मेरे बड़े बंगले में मेरे लिखने का कमरा बाग़ के पास में है। कमरे की बड़ी-बड़ी खिड़कियां खोलने से रंगबिरंगी फूल और पेड़-पौधे दिखाई देते हैं। और रात को जब मैं कश्मीरी अखरोट की लकड़ी की मेज़ पर बैठकर लिखती हूं तो भीनी-भीनी सुगन्ध कमरे में फैली होती है। लिखते समय मैं बिलकुल धीमे स्वर में संगीत बजाती हूं। लिखने के लिए मुझे बढ़िया रंग-बिरंगी पन्ने चाहिए, और मेरी मेज़ पर भिन्न-भिन्न रंग-रूपों के पांच-छः महंगे पैन रखे होते हैं।

कमरा कलात्मक ढंग से सजाया हुआ है। दीवारों पर पेंटिंग्ज़ हैं। खिड़कियों पर बड़े-बड़े परदे हैं। पढ़ने के लिए रॉकिंग चेयर है जिसके पास में जापानी शेड से स्टैण्ड लैंप है। एक पूरी दीवार पर पुस्तकों के शेल्फ बने हुए हैं, और कहीं-कहीं पर पुस्तकों के बीच बड़े-बड़े लेखकों के चित्र रखे हुए हैं।

मैं एक प्रसिद्ध लेखिका हूं। मेरी कई पुस्तकों पर मुझे पुरस्कार और सम्मान पत्र मिल चुके हैं। जहां भी मैं जाती हूं, मुझे विशेष दृष्टि से देखा जाता है, मेरा सम्मान किया जाता है। मुझे मिले ऐसे सम्मान-पत्र और भेंट हुई कलम मैं सजाकर रखे हुए हैं।

समालोचक महाशय न केवल मेरी रचनाओं की बल्कि मेरे रहन-सहन की भी प्रशंसा करते हैं। एक बार मैं अपने केश पेरिस से "कट" करवाकर आई थी और आज तक उसी प्रकार की केश सज्जा करवाती हूं। अपनी साड़ियों पर मैं अपने बनाए "डिज़ाइन" ही पेंट करवाती हूं

गगन के सूर्य थे महात्मा गांधी और चन्द्रमा थे रवि ठाकुर। तारे थे सैंकडों इन्किलाबी। सोमेन्द्र दा हमें कालेज में पढ़ाते थे। उनकी कविताओं का एक लघु संग्रह ने पूरे बंगाल में उथल-पुथल मचादी। हर जलूस तथा सभाओं में उसी संग्रह के गीत गाए जाने लगे। सोमेन्द्र दा को कालेज में बरखास्त कर दिया गया। हम विद्यार्थियों ने हड़ताल की तो उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

हा! युग बदल गए हैं इन दशकों में। अभी उस दिन की ही तो बात है. मेरी लड़की अपने एक मित्र को लेकर मेरे पास आई, 'मम्मी, बादल से मिलो।' उनकी दृष्टि से मैं पहचान गई कि इन्होंने एक साथ जीवन बिताने का निर्णय कर लिया है। पर उन्नीस वर्षों की आयु में जब मेरी सगाई मेरे माता-पिता ने की थी, तब उन्होंने मुझसे पूछने की आवश्यकता तक नहीं समझी थी। बस, एक दिन मुझे कह दिया गया — 'अब तुम किसी जलूस या सभा में भाग नहीं लोगी, अब तुम एक आज़ाद लड़की नहीं पर एक बड़े घर की बहू हो। मेरे ससुर मैजिस्ट्रेट थे और मेरे पति लन्दन से आई. सी. एस. की परीक्षा पास कर आए थे। मेरा इस प्रकार रहना-फिरना उनके कष्ट का कारण हो सकता था। मैं रोयी, जिद की तो मुझे चाचा के यहा, हिमालय की तराई में, चाय के खेतों पर भेज दिया। सोचा होगा कि कुछ माह सहेलियों तथा मित्रों से दूर रहकर मैं ठीक हो जाऊंगी।

पहाड़ की ढलान पर फैले गेंवों के बीचोबीच एक बड़ा सा बगला। शहर से बहुत दूर, पर शहर से अधिक सुख-सुविधाए उपलब्ध थी वहा पर। कई नौकर थे। अंग्रेजी खाना बनाने के लिए मुसलमान 'खानसामा' थे। अंग्रेजी ढंग से सुसज्जित था मेरे चाचा का बगला। बड़े ड्राईंग रूम के पास काच की अलमारियों में कई अंग्रेजी पुस्तकें भरी पडी थी। शायद ही किसी ने कभी खोलकर उन पुस्तकों को देखा हो। मैं दिन में नर्म सोफा पर बैठकर या पलग पर लेटकर अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ती रहती थी।

भी सुनी हुई बातें आकर मुझे बताने लगी—"वह किसी भी गांव में एक रात से अधिक नही रहते। कभी-कभी तो पूरी रात जगल मे ही उन्हे बितानी पड़ती है।"

एक दिन नोकरानी ने आकर बताया कि वे पास की बस्ती मे आए हुए हैं।

सध्या का समय था। अंधेरा पहाड़ों पर धीरे-धीरे आता है। मैं उस संध्या को, घर मे बताए बिना ही नौकरानी के साथ उस छोटी सी बस्ती मे चली गई। छोटी सी झोपड़ी, एक दीपक जल रहा था जिसका प्रकाश इतना मद्धिम था कि अन्दर बैठे परिवार के लोग इनसान नही, बल्कि इनसानो की परछाइयां लग रहे थे।

मैंने जाकर सोमेन्द्र दा के चरणो पर अपना सिर रखा। उन्होने चौंककर अपने पैर हटा लिए। पर उस दीपक के झीने प्रकाश मे भी उन्होंने मुझे पहचान लिया। सच तो यह है कि वे अपने विद्यार्थियो को बहुत चाहते थे, हरेक को उसके नाम से जानते थे।

तुम ! तुम यहा कैसे ?

मैंने उन्हें अपनी राम कहानी सुनाई।

उस बड़े बगले मे दिन भर बैठी-बैठी तग नही होतीं ?

कविताएं लिखती रहती हूं। मैंने हसते हुए बताया।

वे भी हसने लगे। मेरे ना-ना कहने पर भी एक छोटी लड़की मिट्टी के एक बरतन में मूली और थोड़ा सा गुड रख गई। यही इस समां का सबसे बढ़िया खाद्य था जिसे गले से नीचे उतारने के लिए बार-बार पानी पीना पड़ रहा था। ऐसे इनसान कितने न मिश्र और सरल होते हैं। सोमेन्द्र दा उस परिवार से ऐसे बतिया रहे थे मानो वर्षों से उस परिवार के साथ रहते आए हों। पर मैं जानती थी कि वे पहली बार ही उस घर में एक रात बिता रहे थे। उनकी तुलना मे मैं चाचा जी के घर मे दो तीन

"छोटी मेम साहब।" पहाड़ी नौकरानी मेरे कमरे में मेरे सामने खड़ी थी।

"हूं" मैंने मुंह उठाए बिना ही कहा। मैं एक प्रसिद्ध उपन्यास में प्रेम का रोचक वृत्तात पढ़ रही थी।

"रात को वह बगाली बाबू मर गया। चाय के खेतों के मजदूरों ने कुल्हाड़ी से उसकी हत्या कर दी। कहते है चाय के खेतों के मालिकों ने इसके लिए मजदूरों को दो हजार रुपये दिए है।"

मैं चौक गई। मेरे हाथ से पुस्तक छूटकर गिर गई!

मुझे लगा जैसे मैं इनसान नहीं कोई बिल्ली या चूहा हू। मै उस पहाड़ी नौकरानी से आखें न मिला सकी।

—ॐ—

अभी एक सप्ताह भी नही बीता था कि एक सुहानी सुबह को चाचाजी ने मुझे ड्राइंग रूम मे बुलवाया। वहा दो-तीन पुलिस अफसर भी बैठे थे। चाचाजी ने कहा—ये पुलिस अफसर कह रहे हैं कि उस इन्किलाबी के कुछ हस्तलिखित पत्र तुम्हारे पास हैं।

मेरा मुंह पीला पड़ गया। इस ससार मे मैं अभी उस आयु पर नहीं पहुची थी, जब कि झूठ बोलना एक सहज स्वभाव बन जाता है, जीने के ढग का एक भाग!

अफसरो ने मेरे कमरे की तलाशी ली। मैं खिड़की के पास खड़ी थी। बाग मे गुलाब के पौधो के पास, उन्होंने कुछ कागजो पर मिट्टी का तेल छिड़ककर जला दिया।

मैं खिड़की के पास खड़ी देखती रही। मैंने अनुभव किया कि कुछ मेरे अन्तस मे भी जल रहा था, मैं राख बनती जा रही थी केवल राख!

—ॐ—

एक स्मृति, तो क्या इनसान का अतीत केवल एक स्मृति बनकर रह जाता है? मैं उस रॉकिंग चेयर पर बैठी-बैठी सोच रही थी कि इनसान

थे। प्रतिदिन माली उन्हें ठीक से लगाकर रख जाता था। मैं स्वयं क
धिक्कारने लगी, सोमेन्द्र दा से अपनी तुलना करते हुए। वे कौन थे ?
तो मरकर भी एक चमकता सितारा हैं और मैं किसी ड्राइंग रूम में सजाय
हुई बिजली की बत्ती। स्वयं को प्रबोध देने लगी—'यह मेरा दोष नह
था, युग बदला था। □

प्लेटों को पोछकर रखा। अचानक वह किसी बालक-सी ठहाके लगाकर हंसने लगी। उसके दांत दिखाई दे रहे थे, 'नही ऐसे नही चलेगा। केवल एक ही सब्जी है। मैं दो मिनटों मे कुछ बना लूंगी। तुम भी चलकर मदद करो।'

वह रसोई मे जाने के लिए मुडी तो मैंने उसका हाथ पकड लिया। वह अभी तक उस हंसने वाले मूड मे थी। उसके मुख पर क्षण भर पहले वाली उदासी का कही नामोनिशान भी नही था। मेरे द्वारा हाथ पकडने पर उसने अपना हाथ इस प्रकार खोल दिया मानो कुछ दिखा रही हो कि देखो, मेरे हाथ मे कुछ भी नही है। मैंने उसके हाथ को देखा।

"क्यो क्या हुआ? यूं शात क्यो हो गये?"

"नही नोलू, आ बैठ यहां दूसरी किसी चीज की जरूरत नही है।"

उसने आश्चर्य से मेरी तरफ देखा। नही जानता मेरे चेहरे पर ऐसा क्या भाव था जो उसकी हसी सब लुप्त हो गयी। वह शात होकर मेरी प्लेट मे सब्जी डालने लगी। मुह उठाकर एक बार मेरे मुह की तरफ देखा।

हम शाति से खाने लगे। मुह मे ग्रास लेते हुए उसने कहा, "तुम अचानक शात क्यो हो गये?"

"तुम तो जानती हो, कभी-कभी मेरे साथ ऐसा होता है।"

"बिना कारण नही।"

"कारण का स्वय मुझे भी ज्ञान नही होता।"

वह कुछ देर तक शात रही। मैंने उसकी तरफ देखा। हमारी आंखों ने आपस मे बतियाने का प्रयास किया।

"कभी-कभी अब, कभी-कभी कालेज मे, कभी-कभी घर मे भी, अकेलेपन मे मेरे साथ भी ऐसा होता है।"

एक हाथ में पापड़ था जो आग पर रखा था। पापड को आग लग गयी और जलने लगा। उसे इसका कोई ज्ञान नही रहा। पापड जल गया। मैंने आगे बढकर गैस का बटन घुमाकर गैस बन्द कर दी।

"तुम वहां गये थे ?"

"हां।"

"श्मशान तक भी ?"

"श्मशान तक जाने के लिए निकला था। पर खिसक कर समुद्र के किनारे चला गया। वहां एक निर्जन स्थान पर दो घंटे खड़ा रहा, तुमसे सच कह रहा हूं, मैं रोया नहीं था। शान्त खडा रहा। अचानक लहरो ने आकर मेरे पैरों को छुआ था। तब मुझे याद आया कि तुम्हारे यहा आने का कार्यक्रम है।"

"तुम फिर उसके घर नहीं गये ?"

जाने का प्रयत्न किया था। गली के मोड तक पहुचा था। सामने ही बालकनी थी। वही बालकनी जहा विनीता प्रायः बैठा करती थी। वहा दो-तीन स्त्रियां खड़ी थीं। पर मुझे ऐसा लगा मानो खाली है वह फ्लैट मै पांच-सात मिनट वही खड़ा रहा। पास से निकलती हुई टैक्सी के हार्न पर मैंने चौंककर स्वयं को समाला। मै टैक्सी मे बैठ गया और तुम्हारे पास चला आया।"

नीलिमा कुछ देर सोच रही थी, "जब तुम आये तो तुम्हारे मुंह पर दुख की कोई रेखा नहीं थी।"

"सब दुख तो विनीता ने समेट लिये, नीलिमा, वह यह दुख किसी से भी बांटना नहीं चाहेगी।"

नीलिमा सोफे पर बैठ गयी। मेरी दृष्टि उसके पैरो पर पडी जो नगे थे। प्राय. मनुष्य के हाथ और पैर एक प्रकार के होते हैं। नीलिमा के हाथो और पैरो को मैं सैकड़ो हाथो और पैरो मे से पहचान लूं और

हमलोग प्रतीक्षा कर रहे थे। विनीता ने अचानक अपना सूना हाथ मेरी तरफ बढ़ाकर कहा था, "परेश कह रहा था कि कालेज के दिनों में तुम हस्त-रेखा विज्ञान पर कुछ पुस्तकें पढ़ते रहते थे, अब बताओ, मेरे भाग्य में क्या लिखा है ?"

मैंने विनीता के हाथ की अंगुलियों को पकड़ लिया और हाथ को घुमा-फिराकर देखता रहा। फिर मैंने हाथ को छोड़ दिया।

"क्या हुआ ?" विनीता ने उत्सुकता से पूछा

"कुछ नहीं।" मैं कुछ भी देखना नहीं जानता।

"नहीं, छुपाओ नहीं। बताओ। तुम छुपाने का प्रयास कर रहे हो।"

"क्या बताऊ ?"

"तुमने उस दिन जो कहा था। कहो कि वह झूठ था।"

"उस दिन मैं हंसी कर रहा था।"

विनीता अपनी पलकें उठाकर कुछ क्षणों तक मेरी तरफ देखती रही। फिर कलाई घुमाकर घड़ी में समय देखा, "शायद परेश देर से आये, तब तक एक पेग चल जायेगा।"

विनीता उठकर दो पेग बना लायी, एक मुझे दिया, एक उसके हाथ में था।

लगभग दस बजे परेश का फोन आया था कि उसे आने में अभी घंटा--डेढ़ घंटा लगेगा।

"मैं जाता हूं।" मैंने उठते हुए कहा था।

"नहीं, ऐसे कैसे जाओगे। खाना खाकर जाओ।"

"तुम ?"

नीचे सडक पर अधेरा था। चारो तरफ शाति थी। परेश के घर से
कोई विशेष दूर नही था। टैक्सियां भी उसी तरफ खडी होती थी।
तट पर पहुचने के बाद टैक्सी स्टैंड की तरफ चलने की बजाय मैं वही
रहा।

नही मैंने झूठ नही कहा था। विनीता से जब मैंने कहा था कि मेरा
-रेखा विज्ञान मे विश्वास नही है। और यह भी सच कहा था कि इस
का मेरा अध्ययन नहीं जैसा है। फिर मैंने किस आधार पर, उस
ऐसी विचित्र बात विनीता से कह दी थी, जो कि मैंने समझा था कि
ने भुला दी है, पर भुलायी नही थी। कभी-कभी अचानक एसा अनुभव
या जाता है और ऐसा लगता था है कि वह सच है, उस शाम को भी
नीता का हाथ देखकर मैंने अचानक कोई बात कही थी जो कि मैंने अनु-
की थी।

लहरें धीरे-धीरे आ रही थी और धीरे-धीरे लौटकर जा रही थी।
मे कोई सगीत नही था, एक आवाज थी। आवाज जिसका कोई अर्थ
था, आवाज जो शताब्दियो के अभ्यास पश्चात भी पूर्णता नही पा
थी।

"तुम क्या सोच रहे हो?"

मैंने नीलम की तरफ देखा था। वह शात थी। कुछ क्षणो के लिए
ने विनीता के दुख को समझा था। उस दुख का भार अपने कधो पर
नुभव किया था। वह छिन्न-भिन्न भी हुई थी, पर कुछ क्षणो पश्चात
ठीक हो गयी थी। अब वह स्वस्थ होकर सामने बैठी थी। शायद
नीता भी इसी प्रकार सभल जाये, पर इस प्रकार सभलने मे कुछ वर्ष
गे, शायद इसके पश्चात भी वह सभल न सके। हो सकता है उसके
तस मे कुछ टूट-फूटकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, राख-सा, जिसका मुझे भय है
वन भर उस राख का तिलक उसके ललाट पर हो। हर व्यक्ति स्वय ही

"लगता है जैसे अपराधी मैं ही हूं। मस्तिष्क हंसकर कहता है कि बेकार ही हठ कर रहे हो। इस संसार मे युद्ध होते हैं, तूफान आते हैं, पर आते हैं। मनुष्य का जरा भी जोर नहीं चलता। पर नासमझ मन होते हुए भी कुछ नहीं समझता।"

"मैं शान्त हो गया था। दूसरो के सम्मुख बेचारा बनने मे मनुष्य लाज आती है।" नीलिमा ने न जाने कैसी दृष्टि से मेरी तरफ देखा। एक हाथ बढ़ाकर मेरे हाथ पर रख दिया।

"नीलिमा . " नहीं यह कोई वाक्य नहीं था, एक ही शब्द था पर वाक्य सा खिचकर लम्बा हो गया था।

उसने फिर मेरी तरफ देखा।

मैंने खिड़की के बाहर देखा।

यह महानगर, चारो तरफ मनुष्य ही मनुष्य। विनीता उस दिन ताल मे मेरे साथ थी।

उसने पूछा था, "डॉक्टरो ने क्या रिपोर्ट दी ?"

'कोई डर नहीं है। दवा से सब ठीक हो जायेगा।"

मैं झूठ बोला था। उस पहली जांच के समय ही डाक्टरो को भ्रम या था कि 'कैंसर' का केस है। उसके बाद भी जाचें होती रही थी, वनीता से सदा झूठ कहता रहा। पर वह ऐसी नासमझ नहीं थी जो को नहीं समझती हो। एक दिन उसने मेरे सामने ही डाक्टर से ा प्रश्न पूछ लिया। घर लौटते समय टैक्सी मे उसने मेरे साथ एक भी नहीं बोला। घर पहुचकर भी वह मुझसे रूठी रही थी। मैं ग रूम मे अकेला बैठा था वह अपने बैडरूम मे थी। बच्चे अपने रे मे।

रात बहुत बीत चुकी थी। हम एक दूसरे के सामने आने से घबरा

मैं, परेश सब न जाने कौन हैं। न जाने कहां से आये हैं, न जाने कहां जायेंगे, हमारा अतीत, वर्तमान और भविष्य सदा बदलता रहता है।"

अब वह समझ चुकी थी। एक वृक्ष-सी वह खड़ी थी। जैसे किसी बड़े तूफान से लड़ने के पश्चात। मैं उसकी आंखों में देखकर, बिना कुछ कहे विदा लेकर, दरवाजा खोलकर बाहर निकल आया। उसने दरवाजा बंद कर दिया।

"कहां बैठोगे समर ?"

कहीं भी।"

"तुम शोर में सोना चाहते थे न ?"

"तुम ?"

नीलिमा हंसने लगी। वह हंसी जिसमें एकाकीपन भी होता था और शोर भी।

"डांस करोगे ?"

"तुम करोगी, तो करूंगा।"

"किसी दूसरी लड़की के साथ ?"

"नहीं।"

नीलिमा मुस्करा दी। वही उसकी विशिष्ट मुस्कराहट थी। शायद ऐसी मुस्कराहट और किसी के पास नहीं होगी।

दो स्पीकरों में ड्रमों पर कोई तीव्र धुन बज रही है। धुन और तीव्र होती जाती है।

"तुम थक गये हो ?"

"नहीं।"

"आज तुम्हें नाचना नहीं आ रहा।"

रेट सुलगाना भी नहीं आता और पीना भी ।"

नीलिमा ने अपने मुंह का सारा धुआं मेरे मुंह पर फेंक दिया और खांसने लगी उसकी आंखों मे आंसू आ गये । मैंने उसकी अंगुलियों से सिगरेट ले लिया और होंठो से लगा लिया ।

"जीवन बहुत छोटा है न ?" नीलिमा ने मेरे सिगरेट के धुए को पीते हुए कहा ।

"क्यों ?"

"तुम्हें याद है वह रात ? समुद्र के किनारे पर पिकनिक । हम रेत पर अकेले बैठे थे । मैं उस दिन बातें करने के मूड मे थी । तुमने कहा था, ऐसे अकेले बैठे तुम मेरी बातें हजार वर्षों तक सुन सकते हो । मैंने कहा था—नहीं, यह जीवन बहुत छोटा है । तुमने कहा था कि जीवन के कुछ क्षण दिनों से लम्बे होते हैं । और अचानक तुमने लम्बी सांस खींचते हुए कहा था—सचमुच जीवन बहुत छोटा है, एक बार जीने के लिए भी । और कुछ व्यक्तियों के साथ तो बार-बार जीने का मन करता है । तुम्हें याद है वह रात ।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया । शांति से सिगरेट पीता रहा ।

"तुम कभी-कभी ठूंठ से बन जाते हो ।" मैंने बैरे की तरफ देखा जो सूप रखकर चला गया ।

"तुम क्या सोच रहे हो ?"

'तुम्हारे विषय मे ।"

नीलिमा ने कोई कोई उत्तर नहीं दिया । मेरा स्वप्न जैसे टूट गया । "नीलिमा मैं तुम्हें इस जीवन मे कुछ भी नहीं दे सका हूं, पर तब भी जानती हो नीलिमा, मैंने जीवन की श्रेष्ठ घड़ियां नीलिमा नाम की लड़की को ही याद करते हुए बितायी है ।"

जैसे किसी बिफरते हुए बच्चों को शांत करा रही हो, "यह तुम नहीं, पर तुम में जो मर्द है उसका गर्व बोल रहा है। यह तुम नहीं हो अमर। तुम मेरे निकट आकर, मुझे पाकर भी छोड़ जाते हो। तुम अमर, शहंशाह अकबर नहीं हो जो प्रजा को प्रसन्न करने के लिए विवाह करो। तुम मनुष्य हो और वह भी राह तलाशने वाले, सदा कुछ तलाशने वाले।"

मैंने शांति से नीलिमा की तरफ देखा, वह दोनों हाथों से गिलास पकड़े होंठों से लगाये बैठी थी। वह ह्विस्की भी पीती थी, पर पीते हुए उसे आनन्द नहीं आता था। बड़े रैस्टोरेन्टों में मेरे साथ चलती तो थी पर वहां के महंगे भोजन से अधिक उसे घर में रखा हुआ ठंडा फुलका और अचार भाता था। कभी कभी वह मेरे साथ चलकर बढ़िया साड़ियां भी लेकर आती थी। पर पहनती वही सादी और सूती साड़ियां थी, कॉलेज में भी और घूमने जाते समय भी। यूनिवर्सिटी के प्रिय प्रोफेसरों में से एक थी। उसके निबंध आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे, रेडियो और टी0 वी0 पर प्रसारित होते थे, पर अपने व्यक्तिगत जीवन में वह एक बालक समान थी।

'अपने जीवन की डोर मनुष्य के अपने हाथ में होती तो मनुष्य - -"

नीलिमा ने ठहाका लगाकर मेरी बात को बीच में ही काट दिया।

बिल नीलिमा ने ही चुकाया। प्रायः वह ऐसा ही करती है। दूसरों पर पैसा खर्च करने में उसे आनन्द आता है, पर जब कोई उसके लिए पैसा खर्च करता है तो वह डर जाती है-उसे लगता है मानो वह कर्ज ले रही है।"

बाहर, रास्ते पर ठंडी हवा चल रही थी। ऐसा लगा जैसे किसी नए शहर में आये हैं।

"पैदल चलें ?" नीलिमा ने लम्बी हवा पीते हुए पोर्टिको देखते हुए।

महानगरों का यह भाग रविवार है। रास्ते के दोनों तरफ सुन्दर

"विनीता।"

"भारती।"

नीलिमा ने मेरे हाथ पर अपना हाथ रखा। उसका तात्पर्य था रुको। सड़क की दूसरी तरफ एक पारसी बेकरी थी। हम जब भी इधर से निकलते थे तो नीलिमा मुझे ठहराकर बेकरी के काउंटर पर जाती थी और वहां से बिस्कुट आदि लेती थी। मैं वहीं ठहर गया। वह वहां गयी और थोड़ी देर में दो पैकेट लिए हुए वापस आयी। आज तुम्हारे नारियल के बिस्कुट मिले हैं। उसने प्रसन्नता से कहा। इस बेकरी के नारियल के बिस्कुट मुझे बहुत पसंद आते हैं पर ये कभी-कभी ही मिलते हैं।

अब थोड़ी सी चढ़ाई थी। मैंने अनुभव किया कि नीलिमा थक गयी है। इस लड़की की हर बात की जानकारी मुझे हो जाती है। उसका मुंह देखते ही मुझे क्षण भर में ज्ञात हो जाता है कि कालेज में उसका दिन कैसे बीता है। सांस लेने के उसके ढंग से मैं जान जाता हूं कि वह थकी हुई है। उसकी आंखों को देखते ही मैं जान लेता हूं कि वह 'बोर' हो रही है। उसका ललाट देखते ही मैं समझ जाता हूं कि वह शान्तिचित्त है या उसके मन में घनघोर घटाएं उमड़ रही हैं।

घर के दरवाजे तक पहुंचकर उसने पैकेट मेरे हाथों में थमा दिये। चाबी लगाकर ताला खोला, बत्ती जलायी, पंखे को फुल-स्पीड पर चालू किया और अपने बालों को पकड़कर ऊंचा कर पंखे के नीचे खड़ी हो गयी। अचानक उसने हंसते हुए कहा, "उस जापानी फिल्म में हीरोइन के जो ब्वायकट बाल थे, मैं भी वैसे ही कटवाऊं तो कैसे लगेंगे?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल उसकी तरफ देखता रहा।

"तुम थक गयी हो, मैं चलता हूं ..." मैं उठने लगा।

"कॉफी पी जाओ।"

नीलिमा प्लेट में नारियल के बिस्कुट ले आयी और मिनट बाद ही

वह उठ खड़ी हुई, अपने दोनों हाथों से अपने बालों को सवारा, "तुम्हें बहुत देर हो गयी, चलो मैं तुम्हें टैक्सी स्टैंड तक छोड आऊ।"

आधा चन्द्रमा। आधा चन्द्रमा ससार मे प्रकाश और अ धेरा, दोनो फैलाता है। लगता है सृष्टि जैसे अभी बालक है, युवावस्था को अभी प्राप्त नहीं हुई है। पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश कभी-कभी मुझे डरा देता है। कोई भी मेरे रहस्यो को पूर्णरूप से जान नही सकेगा। नीलिमा को चांदनी रातें बहुत अच्छी लगती हैं, शायद उसका प्रथम प्यार चांदनी रात मे हुआ था, कुछ ऐसा ही लगाव उसका चांदनी रात से है।

जब पहली बार नीलिमा मुझे टैक्सी स्टैंड तक छोडने आयी थी तब मैंने कहा था, "तुम अ धेरे मे अकेली कैसे लौटकर जाओगी ?"

नीलिमा हस दी थी, "क्या तुम्हें डर लगता है कि कोई मुझे भगा-कर ले जायेगा ?"

एक बार मैं अपने किसी मित्र की कार लेकर आया था, नीलिमा ने पूछा था। "कार क्यो लेकर आये हो ?"

"तुम्हें भगाकर ले जाने का विचार है।" मैंने हसते हुए कहा था।

नीलिमा मारे हसी के दोहरी हो गयी थी। पेट पर हाथ रखकर कहा था। "क्या इतना साहस है तुममें ?"

मैं समझ गया था। मुझे लगा था मानो बाहर से सजी सजायी तह को खोलकर मेरे जीवन मे भरी गन्दगी को किसी ने देख लिया था। नीलिमा ही मेरी सहायता के लिए आगे आयी थी, "मुझे भगाकर कहा ले जाओगे? इस ससार मे न तुम्हारा कोई घर है न मेरा। सारा ससार हमारा घर है। कहीं भगाकर ले जाना व्यर्थ है।"

पर हमने दूसरे से विदा लेने का सरल मार्ग ढू ढ निकाला था। मैं टैक्सी करता था। नीलिमा भी मेरे पास ही बैठती थी, टैक्सी पहले उसके घर की तरफ चलती जहा वह उतर जाती थी और फिर मैं अपनी राह

कौन है ? वह क्यों मेरे जीवन में आयी थी ? आकर भी, आयी नहीं थी। नहीं मेरे पास थी। सदा मुझ से दूर थी।

चन्द्रमा के हल्के प्रकाश में मैंने देखा। नीलिमा फाटक के अन्दर प्रवेश कर गयी। रास्ता अकेला बन गया .. वीरान, वीरान उस रास्ते की सारी सुन्दरता उदास बन गयी। मैंने चारों तरफ देखा। जहां मैं खड़ा था, वहां से चार रास्ते चार तरफ जा रहे थे। सब रास्ते अकेले थे। सब रास्ते हल्के अंधेरे में डूबे हुए। मेरा मन उदास हो गया। सारा संसार साथ होते हुए भी बिल्कुल अकेला था मैं। ❑

था। वे लोग एक ही कप में एक-एक घूँट कर चाय पीते थे। एक ही सिगरेट सब बारी-बारी पीते थे। अर्चना से अधिक उनके मन में उत्साह होता था। वे सब अर्चना के चित्रों की प्रदर्शनी लगाने की तैयारी कर रहे थे। अर्चना को लगता था कि वह स्वयं कहीं खो गई है। उसका निजी अस्तित्व खो चुका है। वह हर [illegible] मिलकर एक हो गई है। उन्मुक्त हँसी, बेसुरे गीत [illegible] मिलकर काम करना, काम में खो जाना। वे लोग उन आदिवासियों की तरह थे जो मिलकर नाचते-नाचते अपना निजी अस्तित्व खोकर सामूहिक अस्तित्व जीने लगते हैं।

काम के अन्तिम दिन हरीश ने सहज भाव से कहा था—"हमें इतने परिश्रम का कुछ तो पारिश्रमिक मिलना चाहिए।"

अर्चना ने हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा था—"आदेश दीजिए।"

अर्चना के मुख पर मुस्कराहट और शरीर में ताजे फूलों की महक थी। प्रसन्नता से सारा शरीर मानो खिल-खिला रहा था।

हरीश ने नीचे झुककर अर्चना का कपोल चूम लिया था। दूसरों ने भी अपनी बारी ली थी, मनका अम्लगा और डिमोजा ने भी। डिमोजा ने तो अर्चना की आँखें चूम ली थीं और ऐसा करते हुए उसकी खुरदरी दाढ़ी अर्चना की ठोड़ी में चुभती रही थी। तब भी अर्चना हँसती रही थी, किसी छोटे से बालक सी।

कल तक अर्चना मित्रों के साथ थी। आज सवेरे से वह समीर के साथ थी।

आज सवेरे वह जल्दी ही उठ गई थी। स्नान पर अधिक समय लगाया था। अपनी बहुत अच्छी साड़ी पहनकर वह कुछ देर दर्पण के सामने खड़ी होकर स्वयं को ठीक करती रही थी। उसने जीवन में कभी 'मेक-अप' नहीं किया था और आज भी नहीं कर सकी थी, पर स्वयं को

इस छोटे से प्रदर्शन की समाप्ति पर अचानक अर्चना सब से अलग हो गई। अब उसे याद नहीं था कि राज्यपाल की पत्नी ने कैसे प्रश्न पूछे थे और उसने कैसे उत्तर दिए थे। पर उसने यह अनुभव किया था कि सब प्रश्न साधारण थे जो केवल औपचारिकतावश ड्राइंग रूम्स में पूछे जाते हैं। अर्चना ने भी बेमन से उनके उत्तर दिए थे।

राज्यपाल की पत्नी के प्रस्थान करने के बाद शहर के गणमान्य लोग भी जाने लगे। फोटोग्राफर्स भी अपने कैमरे बन्द करने लगे। सब लोग उसका हाथ दबाते हुए, बधाई देते हुए, विदा ले रहे थे। अर्चना बड़े हाल के बीचो बीच बैठी थी। चारों तरफ दीवारों पर उसके बनाए चित्र टंगे हुए थे। लोग हाथों में सूची-पत्र लिए हुए एक-एक चित्र के पास खड़े होकर कुछ ढूंढ रहे थे। क्या वे उन चित्रों में वह सब कुछ देख सकेंगे जो अर्चना के अन्तस में था, जब वह उन चित्रों को पेन्ट करते हुए जिन पीडाओं और कष्टों को झेलती रही थी? दूर से देखते हुए उसे ये चित्र पराए, भिन्न अस्तित्व वाले तथा अनजाने से लगे। वे स्थितियां अब उसके पास जीवित नहीं थी जो उसके अन्तस में उन चित्रों के चित्रण के समय सजीव थी।

"अर्चना! आवाज पर अर्चना चौंक उठी। यह अरुणा की आवाज थी, "तुम अकेली यहां बैठी क्या कर रही हो?"

अर्चना एकाएक कोई उत्तर नहीं दे सकी। उसने अपनी सहेली की तरफ देखा और फिर चित्रों की तरफ। दोनों उसे परिचित भी लगे और अपरिचित भी। अरुणा उसे खींचने लगी—"चल-चल, वहां सब तुम्हें ढूंढ रहे हैं।

आंगन में उसके मित्रगण इकट्ठे होकर बतिया रहे थे। "अर्चना तुम एक दिन में ही धनवान बन गई", यह डिसोजा था "तुम्हारे कई चित्र बिक गए।

मेनका ने कहा—'तुम्हारा वह पांच हजार वाला चित्र 'निर्वसना' भी बिक गया ..

पर फैलने लगा। जैसे ग्राफिस में काम करते हुए व्यक्ति, घर के वातावरण से कट जाता है, पर ग्राफिस के बन्द होने-होने घर का वातावरण फिर उसके पास लौटने लगता है।

सध्या गहराने लगी थी। ग्रर्चना हल्के मन, हल्के शरीर से लम्बे-लम्बे कदम उठाती हुई बस स्टैण्ड पर ग्राकर खड़ी हो गई। बस के लिए लम्बी लाईन लगी हुई थी ग्रौर चारो तरफ लोग फैले थे। वाहन तीव्रगति मे ग्रा जा रहे थे। एक बस ग्राई ग्रौर दो-चार यात्री लेकर चली गई। ग्रर्चना को ग्रच्छा लग रहा था इस प्रकार जीवन का एक ग्रग बनने का एहसास। एक टैक्सी ग्राकर सामने रुकी। 'स्टीयरिंग' पर एक वृद्ध सरदारजी बैठे थे। सरदारजी की निगाहें लाईन मे खड़े लोगो पर फिरने लगी। बिना कुछ विचारे, एक उमग वश ग्रर्चना टैक्सी का दरवाजा खोल-कर उसमे बैठ गई।

एक झटके के साथ, हवा ग्रर्चना के बालो के साथ खेलने लगी। उसके शरीर को गुदगुदाने लगी। ग्रर्चना को ग्रमीत याद ग्राने लगा। वह सदा तीव्रगति से कार चलाता था, उसके पास लाल रग की स्पोर्टस कार थी। स्टार्ट करते ही वह हवा से बाते करने लगती थी ग्रौर ग्रर्चना के बाल हवा मे उड़ने लगते थे। उसके गालो पर थपकिया सी लगनी ग्रारम्भ हो जाती थी।

एक दिन वह पेन्टिंग के कालेज के पास बस स्टैण्ड पर खड़ी थी कि ग्रचानक ग्रमीत ने ब्रेक लगाकर ग्रपनी कार उसके सामने ग्राकर रोकी थी। ग्रमीत ने कार का दरवाजा खोलते हुए कहा था—"मैं तुम्हारे घर की तरफ ही जा रहा हू। तुम्हे ग्रापत्ति न हो तो मैं तुम्हे घर छोड़ता जाऊ।

ग्रर्चना ग्रमीत को जानती थी। पेन्टिंग वाले कालेज मे वह उससे एक साल ग्रागे था। बहुत हसमुख, मिलनसार ग्रौर धनवान घर से था। लड़कियों मे वह प्रिय था।

रहते थे। पर फिर उसने सोचना बन्द कर दिया था और काम में व्यस्त हो गई थी।

अमीत बातें किए जा रहा था। वह खिलखिलाकर हंस भी रहा था। मानो वह अर्चना का मन बहलाने के लिए ही बातें किए जा रहा हो। अर्चना कभी खिड़की के बाहर निहार रही थी तो कभी अमीत की तरफ। अमीत की बातें उसे अच्छी लगी थीं।

अचानक अर्चना ने चिल्लाकर कहा—"अरे मेरा घर आ गया, इतनी जल्दी!"

विदा होते समय अचानक अमीत ने धीमे से आवाज दी—"अर्चना!"

बदली हुई आवाज सुनकर अर्चना ने मुड़कर अमीत की तरफ देखा।

अमीत आंखें मिला न सका था। कहा था—"मैं जानता हूं तुम रोज अधिक से अधिक काम में व्यस्त रहना चाहती हो। फिर, मुझे इजाजत दो तो मैं रोज तुम्हें घर छोड़ता जाऊं, तुम्हें काम के लिए कुछ समय और मिल जाएगा।"

अमीत के स्वर में विनय थी यह जानकर अर्चना को आश्चर्य हुआ था। वह 'हां' या 'ना' कुछ भी न कह सकी थी। हल्की सी मुस्कान होंठों पर उभरी थी।

अमीत ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर कहा था—"दस मिनट हो गया।" और वह हंसने लगा था। अर्चना ने झिझककर उसका हाथ छू लिया था, और मन में सोचा था 'वह अन्दर बाहर एक सा ही है।'

टैक्सी से उतरकर अर्चना सीढ़ियां चढ़कर ऊपर पहुंची। यह एक ऐसा मुहल्ला है जहां शाम होते ही शांति छा जाती है। अर्चना दरवाजा खोलकर अंदर प्रविष्ट हुई। इस [illegible] में घर में प्रविष्ट होने पर अर्चना स्वयं को कोई [illegible] अनुभव करती है। [illegible]

हो जाती है और एक गन्ध, जैसे मिट्टी की सुगन्ध या खाद की दुर्गन्ध, उसके चारों तरफ फैल जाती है, उसे घेर लेती है। उसे मृत शरीर का सा आभास होने लगता है। पर कभी-कभी यह गन्ध उसकी आत्मा को गुद-गुदाने सी लगती है। वह डर जाती है, स्वयं से, इस संसार से।

अर्चना ने अपने शरीर पर एक हलका सा झीना 'गाऊन' पहना। उसके नीचे उसने केवल जाँघिया पहना था। रात को उसे अधिक वस्त्र पहनना अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार का पहला गाऊन उसे वसुंधरा ने भेंट किया था, जो उसका पति उसके लिए जापान से लेकर आया था। पर वसुंधरा ने अर्चना को दे दिया था। वह गाऊन रेशमी था। फिर अर्चना ने उस प्रकार के कई हलके सूती गाऊन अपने लिए बनवा लिए थे, जो कभी कभी तो काम करते हुए उसे सारा दिन पहने हुए होते थे।

वसुंधरा भारत में होती तो आज के सारे कार्यक्रम की व्यवस्था वह स्वयं करती। बहुत प्रसन्न होती वह। वह अर्चना को बहुत चाहती है। ऐसे प्यार को क्या संज्ञा दी जाए अर्चना नहीं जानती। वह इस प्रकार प्यार को समझ नहीं पाई है, और न हो उस प्रेम की तुलना में प्यार लौटा पाई है।

वसुंधरा का पति हर वर्ष व्यवसाय के विचार से विदेश जाता है। इस बार वह प्रथम बार वसुंधरा को भी साथ ले गया है। उनका एक ही बेटा है जो देहरादून के किसी स्कूल में पढ़ता है। पर क्या वसुंधरा वहाँ विदेश में प्रसन्न होगी? वह तो सदा असंतुष्ट ही रही है। जो कुछ उसे मिलता है वह उसे छोड़, कुछ और खोजती रहती है। उस क्या चाहिए यह वह स्वयं भी नहीं जानती। सदा अपने आप से रुष्ट रहती है।

अर्चना, मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैंने जीवन में कुछ नहीं पाया!

क्यों दीदी? अर्चना कहती थी, आपके पास तो सब कुछ है। ऐसा

अर्चना एक बात कहूं, जीवन मे कभी अपना मस्तक मत झुकाना। कभी भी गलत बात स्वीकार मत करना। एक बार हार मानने के पश्चात हर मोड पर हार माननी पडती है। जीवन मैं पराजयो का क्रम बन जाता है।

वसुंधरा अर्चना से बहुत बडी है। जब अर्चना इस शहर में अकेली थी तो वसुंधरा ने ही अधिकाधिक सहायता की थी। कभी कहती—अर्चना तुम मेरी बेटी बनोगी? कभी कहती—अर्चना, तुम यह अकेला कमरा छोडकर मेरे फ्लैट मे चलकर रहो। कभी कहती—मैं जहा भी कोई अच्छी चीज देखती हूं तो सोचती हू कि यह चीज अर्चना के पास हो। घर में कोई भी अच्छी चीज बनती है तो पहले विचार आता है कि क्या यह चीज अर्चना को पसन्द होगी?

अर्चना असमंजस मे पड जाती है कि वह इतने स्नेह, इतने मोह का प्रतिकार कैसे दे। वह कभी-कभी कोई छोटी-मोटी भेंट लेकर दे आती थी।

अर्चना ने अपने कमरे आकर मे चारो तरफ देखा यह सोचकर सतोष हुआ कि आज पेट के लिए उसे कुछ बनाना नही है। यह मुआ पेट जीवन का कितना समय छीन लेता है। शाम को मित्रो के साथ उसने कुछ खाया था।

कमरे मे एक तरफ लकडी का तख्त पडा था जो दिन मे 'सेटी' का काम देता था और रात में पलग का। रात को केवल रगीन चादर पर अर्चना सफेद चादर बिछा देती थी। कमरे मे बहुत कम फर्नीचर था और सब अव्यवस्थित। मानो इस कमरे मे रहने वाले को कभी समय ही न मिला हो घर को व्यवस्थित करने का।

यह दिन की घटनाओं को, पूरे सप्ताह के सारे जीवन को भुला बैठी। वह फिर अकेली थी अपने आप के साथ। यह सप्ताह शायद वह किसी अन्य का जीवन जी थी। वह केवल अपने कमरे मे ही नहीं, अपने एकाकी जीवन मे लौट आई थी। उसने मेज पर से पिछले दिनो की आई हुई डाक

प्रदर्शन था। उस वर्ष मुख्य अतिथि नवकांत था। वह कुछ दिन पूर्व ही विदेश से लौटा था। उद्घाटन के पश्चात वह प्रदर्शिनी में घूम रहा था कि चलते-चलते वह अर्चना के बनाए एक चित्र के सामने रुक गया था। नवकांत ने चारों तरफ देखा था। उसकी दृष्टि विद्यार्थियों के साथ खड़ी अर्चना से आ मिली।

यह चित्र तुम्हारा है? अपनी भारी आवाज में उसने अर्चना से पूछा था।

अर्चना ने सिर हिलाकर "हाँ" कहा था।

नवकांत कुछ देर तक अर्चना की तरफ देखता रहा था, फिर उसने चित्र की तरफ देखा और आगे बढ़ गया।

-रूप में जो कुछ भी है उसके विषय में बताओ। आसमान और समुद्र के बीच मात्र हवा होती है। वह संसार भर की बातें सुनती है, परन्तु वह निर्लेप है…

कोई जल्दी नहीं थी। अर्चना इस स्तब्धता में हवा की, समुद्र की आवाज को पीती रही। फिर अचानक उसने अपने बोलने की आवाज सुनी। वह बहुत कम बोलती थी। पर उस दिन वह बोली और बोलती ही रही। आधा घंटा, घंटा। न जाने कितना समय बीत गया। बीच-बीच में नवकान्त कुछ प्रश्न पूछता रहा, उसकी दृष्टि अर्चना पर जमी थी। वह इस प्रकार बोले जा रही थी, जिस प्रकार उसने कभी माता-पिता, बहनों-सहेलियों तथा मित्रों से भी बात नहीं की थी। मानो वह अपने आप से बतिया रही थी। बहुत सी बातें जो उसने कभी सोची भी न थी, कुछ बातें जो कभी अधूरी अनुभव की थी, कुछ, जिनका केवल उसे आभास ही हुआ था, अब स्पष्ट होकर उजागर हो गईं। अर्चना ने स्वयं को हल्का अनुभव किया, मानो बीते हुए वर्षों का सारा बोझ, हवा सा हल्का हो गया।

फिर वही शान्ति, समुद्र की मद्धिम आवाज और हवा की मित्रता! नवकान्त इस शान्त समय में समुद्र की ओर निहार रहा था। उसके शरीर में गति उत्पन्न हुई—'तुम काफी पीओगी, अर्चना ?'

अर्चना ने आश्चर्य से चारों तरफ देखा। पहली बार उसे ध्यान आया कि इस घर में केवल दो ही प्राणी उपस्थित थे। न नौकर था और न ही कोई अन्य स्त्री। वह उठ खड़ी हुई।

काफी मैं बनाकर लाती हूं।

अर्चना ने स्वयं ही जाकर रसोई घर ढूंढ लिया और सामान ढूंढकर काफी के दो कप बनाकर ले आई। धुंधलका बढ़ने लगा था पर नवकान्त ने बत्ती नहीं जलाई थी। वह शान्त, काफी पीने लगा।

अचानक नवकांत ने पूछा—तुम्हें समुद्र की आवाज कैसी लग रही है ?

पट्टियों से पास बाल सफेद होने लगे थे। वह रंग का गोरा था।

वे समुद्र के सामने एक बड़े पत्थर पर आकर बैठ गए। कुछ देर बाद अर्चना ने कहा—कभी कभी मैं आपके विषय में सोचती हूं।

नवकान्त ने अर्चना की तरफ देखा तो वह हलका सा हंस दी। यूं हलका सा हंसना कुछ दिनों से ही उसकी आदत सा बन गया है। बातें करते हुए, शांत रहते हुए, अचानक वह हंसने लगती है और फिर होंठ भींचकर हंसी रोकने का प्रयास करती है।

नवकान्त ने प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा।

आप सदा भटकते क्यों रहते हैं? मैंने सुना है कि आजकल आप पेन्टिंग भी कम करते हैं। केवल भटकते रहना, एक स्थान पर न टिकना!

रोज़ दिन में निश्चित समय पेन्टिंग का काम करना भी तो आफिस में आठ घन्टे काम करने के समान है।

अचानक नवकान्त अपने होंठ भींचकर शान्त हो गया—नहीं अर्चना, यह समस्या इतनी सरल नहीं है। चलो घर चलें। मैं तुम से कुछ नहीं छिपाऊंगी। पर इतना समय बीतने के बाद ऐसा लगता है कि जीवन में पाना और खोना दोनों एक सी बातें हैं।

नवकान्त ने कभी भी प्रकट नहीं किया था, पर उसकी आंखों में सदा एक अजीब सी पीड़ा दिखाई देती थी। जिसे दुःख भी नहीं कह सकते, एक एकाकीपन। जब अर्चना की दृष्टि उसकी आंखों पर पड़ती थी तो वह चाहती थी कि मां की भांति नवकान्त का सिर अपनी गोद में छिपा ले। इस इनसान को थोड़ी सी प्रसन्नता देने के लिए उसका मन तड़प उठता था।

आपने विवाह क्यों नहीं किया? शान्ति को तोड़ती हुई अचानक अर्चना को अपनी आवाज़ सुनाई दी।

नवकान्त ने मुड़कर इस प्रकार देखा, जैसे गौतम ने अपनी समाधि

☐

अर्चना ने कमरों में घूमकर यहां-वहां से पुस्तकें और पत्रिकाएं एकत्रित की । कुछ तो नवकान्त की हो चुकी प्रदर्शनियों के सूचीपत्र थे । कुछ पत्रिकाओं में नवकान्त के लेख प्रकाशित थे । नवकान्त ने उसे कभी ये लेख नहीं दिखाए थे और न ही उनके विषय में कुछ उसे बताया था । अर्चना धरती पर बिछे गालीचे पर तकिया रखकर लेट गई । नवकान्त के विषय में पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आ गई ।

जब उसकी आंख खुली तो कमरे में धुंधलका छाया हुआ था । कहीं से धीमे संगीत की आवाज आ रही थी । अर्चना जाकर मुंह-हाथ धो आई । संगीत की आवाज नवकान्त के सोने वाले कमरे से आ रही थी । दरवाजा आधा खुला था । शायद नवकान्त ने दरवाजा इसलिए बन्द नहीं किया था कि कहीं अर्चना की नींद न टूट जाए । अर्चना कुछ देर तक दरवाजे के पास खड़ी संगीत सुनती रही । यह कमरा भी अन्य कमरों सा खाली था केवल धरती पर सफेद चादर से बिस्तर बिछा हुआ था । पास ही रखा टेप रेकार्डर बज रहा था । नवकान्त तकिये का सहारा लिए बैठा था । उसके हाथ में कोई पुस्तक थी । अर्चना ने दरवाजे पर टक-टक कर आवाज की । नवकान्त ने पुस्तक से आंखें उठाकर स्वाभाविक स्वर में कहा आओ अर्चना ।

अर्चना जूती उतारकर धरती पर बिछे बिस्तर पर बैठ गई । कमरे में बैठने के लिए और कोई स्थान न था । नवकान्त ने पुस्तक रख दी और दोनों शान्ति से संगीत सुनने लगे ।

रसोई में खिड़की के बाहरी किनारे पर एक कबूतरी बैठी थी । फिर एक कबूतर आया । दोनों आपस में चोंचें मिलाकर प्यार करते रहे । गुटरगूं…गुटरगूं कर बातें करते रहे…·····

बाहर सवेरे की सुहानी धूप फैली हुई थी । अर्चना गैस पर चाय बना रही थी । बार-बार उसे कबूतरों की आवाज सुनाई देती और उसके हाथ कांप जाते ।

ज़मींदार थे और मैं सन्यासी बनने की सोचा करता था। मेरे इस निश्चय को तोड़ने के लिए मेरा विवाह कर दिया गया। सोलह वर्ष की आयु में मैं घर से भाग निकला। फिर मैंने उस घर का द्वार नहीं देखा।

अर्चना आश्चर्य से नवकान्त की तरफ देखती रही। फिर अचानक वह हंसने लगी और देर तक हंसती रही। जब उसकी हंसी बन्द हुई तो उसने कहा—मेरी जिज्ञासा समाप्त हो गई। मुझे लगता है कि मैं आपको भली भांति जानती हूं, ये छोटी-छोटी बातें अब केवल ऊपरी सतह की लहरों सी लगती हैं।

कुछ देर शान्त रहने के बाद अर्चना ने पूछा आपको याद है?

क्या?

उस स्त्री की।

केवल नाम याद है।

और कुछ भी नहीं?

नहीं, न मैंने उसका शरीर देखा था, न उसकी आत्मा।

अर्चना मुस्करा दी, जैसे वह नवकान्त के सामने सदा मुस्कराती है। अन्य किसी के सामने वह इस प्रकार नहीं मुस्कराती। और अर्चना सम्पूर्ण तृप्ति का अनुभव करती है।

—❀—

अर्चना ने पोस्ट कार्ड वापस मेज पर रखा और उठ खड़ी हुई। जब भी उसे नवकान्त की याद आती है तो वह चाहती है कि कुछ देर के लिए खिड़की के पास खड़ी हो ताजी हवा का सेवन करे, आसमान की तरफ देखती रहे। वह कुछ देर तक खिड़की के पास खड़ी रही। सड़कें और भवन अभी सोए नहीं थे। आसमान पर अर्ध चन्द्रमा तारों के साथ मौजूद था।

अकेले में अपनी बहन से मिलना चाहती थी, बातें करना चाहती थी। पर उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि वह जिससे बातें करना चाहती है वह इनसान नहीं पर कपड़ों और गहनों से सजी एक गुडिया मात्र है। दो-चार बार वह माता-पिता के सामने भी आई, पर उनकी आंखों में विरक्ति देखकर भय-भीत हो गई। उसने समझा था कि वह अपने भाई के निकट पहुंच सकेगी, जो कालेज में पढ़ता था। पर उसे यह जानकर आघात पहुंचा कि उसका भाई केवल डिग्री पाने के लिए पढ़ रहा है न कि ज्ञान प्राप्ति के लिए। रात को मन ही मन वह रोती रहती थी। इतना एकाकीपन ! हृदय में छाया इतना सन्नाटा तो उसने अपने अकेले कमरे में भी कभी अनुभव नहीं किया था। शिष्टाचार के नाते वहां वह दो-चार दिन रही थी, पर वे दिन मानो उसने नरक में बिताए थे। सब की अजनबी निगाहें उस पर जमी होती थीं। रिश्तेदार जो वहां आए हुए थे वे उसकी तरफ इस प्रकार देखते थे मानों वह किसी चिड़िया घर का प्राणी थी।

विदा लेते समय माता-पिता फिर रोये थे। अर्चना की आंखों से भी दो आंसू बह निकले थे। पर उसने मन ही मन अनुभव कर लिया था कि सम्बन्ध के सब अदृश्य धागे टूट चुके थे। वह उस कठपुतली-नृत्य में बिना धागे की कठपुतली थी, जो नृत्य में भाग नहीं ले सकती थी। लौटते समय ट्रेन में वह आश्चर्य कर रही थी कि क्या ये वही मां-बाप थे जिन्होंने उसे जन्म दिया था !

अर्चना ने एक ठण्डी श्वास लेकर वह पत्र मेज पर रख दिया। सोचा, कल "शुभकामनाओं" का तार दे दूंगी। पत्र लिखने जितने शब्द भी तो वह उनके साथ बोल नहीं सकती।

न जाने रात कितनी बीत चुकी होगी। उसकी हर रात ऐसी ही लम्बी हो जाती है। कभी-कभी तो आधी-आधी रात तक वह पुस्तक पढ़ती रहती है और कभी-कभी आधी रात तक वह पुस्तक पढ़ती रहती है और कभी कभी चौंक कर जाग जाती है और चाहती है कि बत्ती जला-

अमीन, जो अन्य लड़कियों के सामने बड़ी-बड़ी डींगें मारा करता था, अर्चना के सामने सदा शांत रहता था। कितनी बार उसने कई प्रकार से अपना प्यार जताने का प्रयत्न किया था पर अर्चना ऐसा प्रदर्शित करती थी कि वह समझ ही नहीं रही। कभी-कभी अमीन का मुरझाया मुख देखकर उस पर दया भी आती थी पर वह बेबस होती थी।

अमीन के पिता ने कलकत्ते में एक आफिस खोली थी। इसलिए अमीन को पेन्टिंग का कोर्स बीच में ही छोड़कर वह आफिस सम्भालने के लिए कलकत्ते जाना पड़ा। अर्चना को जब वह अंतिम भेंट याद आती है तो वह अन्दर ही अन्दर हंसने लगती है। वे समुद्र के किनारे बैठे थे—

मुझे कलकत्ता कैसा लगता है?

अर्चना ने हंसते हुए कहा था—मैंने कलकत्ता देखा ही कहां है।

अर्चना, अमिन के मूर्खतापूर्ण प्रश्नों पर हंस रही थी। उस अन्तिम विदा के समय अमीन ने साहस कर भुककर अर्चना के बालों को चूम लिया था और फिर डरपोक की भांति कार स्टार्ट कर भाग निकला था। अर्चना ने अन्दर ही अन्दर ठहाके लगाये थे कि जिस युवक के कई युवतियों से गहरे सम्बन्ध थे, जो क्लबों में लड़कियों को अपने बाहुपाश में भर कर नृत्य करता था वह उसके सामने इतना लजालु कैसे बन जाता है।

अर्चना की सब सहेलियों को अमित की उत्सुकता का ज्ञान था। कोई कहती—मैं तुम्हारी जगह होती तो अब भी हां कह देती। कोई कहती-तुम पागल हो जो ऐसा सुनहरा अवसर हाथ से गवा रही हो! पिता ने कहा था—अमीन से विवाह करने पर तुम गवाओगी क्या? और पाओगी कितना! इतने सुख सुविधाएं तो किसी भाग्यवान को ही मिलते हैं।

वसुंधरा ने कहा था—अर्चना, स्त्री के लिए जीवन में कोई सहारा होना जरूरी है। हमारा समाज ही ऐसा है। अकेली स्त्री न घर का न घाट की। आर्थिक सुरक्षा के अतिरिक्त इनसान किसी भी काम में अपना तन-मन पूरी तरह से लगा नहीं सकता और फिर शारीरिक भूख भी तो है! बताओ तुम उस भूख की सतुष्टि बिना रह सकोगी?

अर्चना धीरे-धीरे मुस्कराती है, मुस्कराहट जिसमें कोई पीड़ा छिपी होती है। उसे अपनी सखियों तथा हितैषियों के तर्क सर्वथा सही लगते हैं। पर फिर भी वह अभी तक "हां" नहीं कर सकी।

कृष्ण खटवाणी

जन्म 7–11–1927 टाण्डाशाह, जि नवाबशाह (पाकिस्तान)

शिक्षा मैट्रिक तक कराची (सिन्ध मे) कालेज शिक्षा शान्ति निकेतन मे

प्रकाशित पुस्तकें कुल 14 पुस्तक
कहानी सग्रह–6, उपन्यास–5, कविता सग्रह–1, जीवनी–1, नाटक–1,

विशेष साहित्य अकादमी 1980 मे 'याद हिक प्यार जी' उपन्यास पुरस्कृत

विशेष 'याद हिक प्यार जी' उपन्यास 1980 मे साहित्य अकादमी से तथा मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी से पुरस्कृत 'अकेली' कहानी सग्रह केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय से पुरस्कृत
केन्द्रीय साहित्य अकादमी और केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के सलाहकार समिति के सदस्य। मध्य प्रदेश साहित्य परिषद के सिन्धी भाषा विशेषज्ञ।

सम्पर्क 5/3 न्यू पलासिया, इन्दौर (म.प्र) 452001